ISSN 0975-850X

अनुसंधान शोध त्रैमासिक

वर्ष : 5, जुलाई–सितम्बर 2014

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा से सहयोग प्राप्त

सम्पादक
डॉ. शगुफ़्ता नियाज़

सलाहकार सम्पादक
डॉ. एम. फ़ीरोज़ अहमद

अनुसंधान पत्रिका अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध **www.vangmay.com**

परामर्श मण्डल
प्रो. रामकली सराफ (बी. एच. यू.)
मूलचन्द सोनकर (वाराणसी),
डॉ. मेराज अहमद (अलीगढ़)

सम्पादकीय कार्यालय :
205- ओहद रेजीडेंसी, नियर पान वाली कोठी, दोदपुर रोड, सिविल लाइन, अलीगढ़-202002
vangmaya@gmail.com, shaguftaniyaaz@gmail.com
Mob- 09044918670

सहयोग राशि : एक प्रति 40 रु.
व्यक्तिगत पाँच वर्ष के लिए : 1000/–, द्विवार्षिक शुल्क संस्थाओं के लिए : 400/–, व्यक्तिगत आजीवन सदस्य : 2000/– (दस वर्ष के लिए), संस्थाओं के लिए आजीवन : 2500/–(दस वर्ष के लिए)

सह–सम्पादक :
विनीत कुमार (अलीगढ़)
सलीम मुजावर, फ़ोन-9480781006

कानूनी सलाहकार :
एम. एच. खान, एडवोकेट(हाईकोर्ट, इलाहाबाद)
एम. ए. खान, एडवोकेट(हाईकोर्ट, इलाहाबाद)

सम्पादन सहयोग :
यूसुफ अली (अलीगढ़)

सम्पादन/संचालन :
अनियतकालीन, अवैतनिक और अव्यावसायिक।
रचनाकार की रचनाएँ उसके अपने विचार हैं।
रचनाओं पर कोई आर्थिक मानदेय नहीं दिया जाएगा।
लेखकों, सदस्यों एवं मित्रों के आर्थिक सहयोग से पत्रिका प्रकाशित होती है।
उनसे सम्पादक-प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।
किसी भी विवाद के लिए न्याय क्षेत्र अलीगढ़ होगा।
अलीगढ़ से बाहर का चेक स्वीकार नहीं होगा।

शुल्क भेजने का पता :

मनीआर्डर या बैंक ड्राफ़्ट : 'डॉ. शगुफ़्ता नियाज़' या 'अनुसंधान' के नाम
205- ओहद रेजीडेंसी, नियर पान वाली कोठी, दोदपुर रोड, सिविल लाइन, अलीगढ़-202002 (उ.प्र.)

डॉ. शगुफ़्ता नियाज़ की ओर से डॉ. शगुफ़्ता नियाज़ द्वारा प्रकाशित, डॉ. शगुफ़्ता नियाज़ द्वारा मुद्रित तथा रुचिका प्रिंटर्स दिल्ली में मुद्रित एवं ***बी-4, लिबर्टी होम्स, अब्दुल्लाह कॉलेज रोड, अलीगढ़-202002*** से प्रकाशित।

सम्पादकीय

आर्थिक सहयोग के बिना पत्रिका को निरंतर निकालते रहना वर्तमान हिंदी के संदर्भ में जहाँ पढ़ने वालों की संख्या अधिक नहीं है वही पत्रिका निकालना अत्यंत दुष्कर कर्म है। परंतु पाठको को यह जानकर हर्ष होगा कि पूरे वर्ष के लिए (2014-2015) अनुसंधान की 113 प्रतियाँ प्रति अंक की केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली में खरीदी जा रही है। जिससे हमारी अनुसंधान टीम को बड़ा बल मिला है। जिसके फलस्वरूप अब हम इसके वाह्य स्वरूप को भी बदलने के लिए प्रयासरत है। परंतु आन्तरिक गुणवत्ता जो कि नए लेखक/लेखिकाओं के हाथों में है उनसे विनम्र अनुरोध हैं वह शोध पत्र के मानकों के आधार पर ही हमें शोध पत्र भेजें। जिससे इसका स्तर माँग प्रति की आवश्यकताओं को पूरा करने वाली पत्रिकाओं से इसकी तुलना न की जा सके। आपके भेजे हुए लेख इस पत्रिका की वह उष्मा है जो इसे गति देती है अतः स्तर को बनाए रखने में आपसे सहयोग अपेक्षित है।

डॉ. एम. फ़ीरोज़ खान ने ऐतिहासिकता बनाम बशारत मंज़िल आलेख लिखा है। जिसमें उन्होंने ऐतिहासिक दृष्टि से उपन्यास का विश्लेषण करते हुए ऐतिहासिक उपन्यास की मौलिक अवधारणा को स्थापित करने का प्रयास किया है।

आदर्श और यथार्थ का उद्‌भुत मिश्रण उपन्यास अपवित्र आख्यान आलेख अंकित ने लिखा है। जिसमें उन्होंने आदर्श और यथार्थ की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए, उसी परिप्रेक्ष्य में आलोच्य उपन्यास को देखने की कोशिश की है।

अरूण प्रसाद रजक ने हरिजन गाथाः अग्निपुत्रों का क्रांतिकारी आह्‌वान आलेख लिखा है। जिसमें उन्होंने हरिजन गाथा कविता का मूल्यांकन करते हुए, समतावादी मूल्यों की कविता के रूप में समझाने का प्रयास किया है।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर का व्यक्तित्व एवं सामाजिक परिवर्तन में उनका योगदान आलेख डॉ. हरिनाथ ने लिखा है। जिममें उन्होंने अम्बेडकर के बहुआयामी व्यक्तित्त्व पर प्रकाश डालते हुए तत्कालीन सामाजिक परिवर्तन में उनकी भूमिका का परिचय कराया है।

डॉ. राजेश्वरी ने गीतांजलिश्री की कहानियों में पर्यावरण चेतना आलेख लिखा है। जो वास्तव में कथा-साहित्य को देखने की एक नवीन दृष्टि है। जिसमें उन्होंने पर्यावरण चेतना को दिखाया है।

स्वातंत्र्योत्तर मिथकीय खण्ड काव्यों में आधुनिक भावबोध आलेख डॉ. एन. टी. गामीत ने लिखा है। जिसमें उन्होंने मिथक के सम्प्रत्यय को स्पष्ट करते हुए, आज़ादी के बाद के खण्ड काव्यों पर दृष्टिपात किया है।

सुजाता ने प्रयोजनमूलक हिंदी की अवधारणा एवं विकास आलेख लिखा है। जिसमें उन्होंने प्रयोजनमूलक हिंदी के विकास पर चर्चा करते हुए वर्तमान युग में उसकी महत्ता पर विचार किया है।

राष्ट्रभाषा हिंदी का न्यायिक स्वरूप आलेख डॉ. विनीता शुक्ला ने लिखा है। जिसमें उन्होंने हिंदी की संवैधानिक स्थिति को स्पष्ट करते हुए उसके न्यायिक स्वरूप का मूल्यांकन किया है।

दुर्गा खत्री ने 21वीं सदी के साहित्य में दलित विमर्श आलेख लिखा है। जिसमें उन्होंने दलित विमर्श का स्वरूप एवं मूल्यांकन करते हुए, ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों का विश्लेषण किया है।

छायावादी काव्य में नारी आलेख प्रा. बालु भोपू राठोड ने लिखा है। जिसमें उन्होंने छायावादी कवियों की नारी दृष्टि को अलग-अलग दिखाते हुए उसका विश्लेषण किया है।

डॉ. रजनी चौबे ने भारतीय संविधान और राजभाषा हिंदी आलेख लिखा है। जिसमें उन्होंने भारतीय संविधान में हिंदी के स्वरूप पर विचार करते हुए, राजभाषा हिंदी का स्थान निर्धारित करने का प्रयास किया है।

केशव प्रसाद मिश्र कृत क्या रोशनी मौत है उपन्यास का विश्लेषण आलेख राजेश यादव ने लिखा है। जिसमें उन्होंने उपन्यास के यथार्थ स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

संगम वर्मा ने बाज़ारीकरण-भूमण्डलीयकरण का जाल : स्त्री-विमर्श आलेख लिखा है। जिसमें उन्होंने स्त्री-विमर्श के स्वरूप एवं महत्ता पर विचार करते हुए, उसकी बाज़ारीकरण और भूमण्डलीयकरण की वजह से, आयी हुई विसंगतियों को विश्लेषित करने का प्रयास किया है।

विभक्त परिवार का बंटी आलेख डॉ. हर्षद कुमार चौहान ने लिखा है। जिसमें उन्होंने आज़ादी के पश्चात् भारतीय समाज में आयी विसंगतियों के संदर्भ में आपका बंटी उपन्यास का विश्लेषण किया है।

अमित कुमार शर्मा ने शब्द का सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य आलेख लिखा है। जिसमें उन्होंने शब्द की प्रकृति और परिभाषाओं को विश्लेषित करने का प्रयास किया है।

रामदरश मिश्र का कृतित्त्व : एक अध्ययन आलेख कैलाशकुमार गढ़वी ने लिखा है। जिसमें उन्होंने रामदरश मिश्र के कृतित्त्व पर प्रकाश डालते हुए उनका साहित्यिक मूल्यांकन किया है।

डॉ. के. आशा ने समकालीन परिप्रेक्ष्य में हिंदी का वैज्ञानिक साहित्य-सृजन आलेख लिखा है। जिसमें उन्होंने हिंदी साहित्य और प्रौद्योगिकी के संबंध को स्पष्ट करते हुए वर्तमान में उसकी महत्ता को उजागर किया है।

21वीं शती की हिंदी कविता में समाज सापेक्षता आलेख अंकुश जाधव ने लिखा है। जिसमें उन्होंने 21वीं सदी के बाज़ारीकरण निजीकरण और भूमण्डलीकरण की विसंगतियों और दबाव के परिप्रेक्ष्य में हिंदी कविता का विश्लेषण किया हैं।

सुनीला छापर/डॉ. सुमन शर्मा ने बातां री फुलवाड़ी में मानवता आलेख लिखा है। जिसमें उन्होंने 'बातांरी फुलवाड़ी' को मानवता की दृष्टि से विश्लेषित करने का प्रयास किया है।

देवर्षि कलानाथ शास्त्री रचित संस्कृत नाट्यवल्लरी में ध्वनि प्रभाव आलेख अर्चना सिंह चौधरी/प्रो. मीरा शर्मा ने लिखा है। जिसमें उन्होंने ध्वनि की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए, संस्कृत नाट्यवल्लरी को नवीन दृष्टि से देखने का प्रयास किया है।

पूजा गौतम/प्रो. मीरा शर्मा ने धर्मशास्त्रीय वर्ण व्यवस्था एवं सामाजिक प्रबंधन आलेख लिखा है। जिसमें उन्होंने वर्ण व्यवस्था पर विचार करते हुए, सामाजिक प्रबंधन का मूल्यांकन किया है।

कहानीकार चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' आलेख राजकौर ने लिखा है। जिसमें उन्होंने गुलेरी को कहानीकार के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया है।

डॉ. तसनीम पटेल ने अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में हिंदी आलेख लिखा है। जिसमें उन्होंने विभिन्न देशों में हिंदी की स्थिति एवं विकास को विश्लेषित किया है।

शगुफ़्ता

उपलब्ध

वाङ्मय पत्रिका, अलीगढ़

वाङ्मय पत्रिका का आदिवासी विशेषांक 1–2

मूल्य– 320 रुपए रजि. डाक से

सम्पर्क– **205- ओहद रेजीडेंसी, नियर पान वाली कोठी, दोदपुर रोड, सिविल लाइन, अलीगढ़-202002, मोबाइल नं. 09044918670**

अनुक्रम

सम्पादकीय

डॉ. एम. फ़ीरोज़ खान
ऐतिहासिकता बनाम बशारत मंज़िल/6

अंकित
आदर्श और यथार्थ का अद्‌भुत मिश्रण उपन्यास–अपवित्र आख्यान/13

अरूण प्रसाद रजक
हरिजन गाथा : अग्निपुत्रों का क्रांतिकारी आह्‌वान/19

डॉ. हरिनाथ
डॉ. भीमराव अम्बेडकर की व्यक्तित्व एवं सामाजिक परिवर्तन में उनका योगदान/21

डॉ. राजेश्वरी
गीतांजलि श्री की कहानियों में पर्यावरण चेतना/24

डॉ. एन. टी. गामीत
स्वातंत्र्योत्तर मिथकीय खण्ड काव्यों में आधुनिक भावबोध/26

सुजाता जन्नू
प्रयोजनमूलक हिंदी की अवधारणा एवं विकास/30

डॉ. विनीता शुक्ला
राष्ट्रभाषा हिंदी का न्यायिक स्वरूप/31

दुर्गा खत्री
21वीं सदी के साहित्य में दलित–विमर्श/32

प्रा. बालु भोपू राठोड
छायावादी काव्य में नारी/37

डॉ. रजनी चौबे
भारतीय संविधान और राजभाषा हिंदी/39

डॉ. हर्षद कुमार चौहान
विभक्त परिवार का बंटी/42

अमित कुमार शर्मा
शब्द का सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य/44

कैलाशकुमार गढ़वी
रामदरश मिश्र का कृतित्त्व : एक अध्ययन/46

राजेश यादव
केशव प्रसाद मिश्र कृत क्या रोशनी मौत है उपन्यास का विश्लेषण/50

संगम वर्मा
बाज़ारीकरण–भूमण्डलीयकरण का जाल : स्त्री विमर्श /53

डॉ. के. आशा
समकालीन परिप्रेक्ष्य में हिंदी का वैज्ञानिक साहित्य सृजन/55

अंकुश जाधव
21वीं शती की हिंदी कविता में समाज सापेक्षता/57

सुनीला छापर/ डॉ. सुमन शर्मा
बातां री फुलवाड़ी में मानवता/59

अर्चना सिंह चौधरी/प्रो. मीरा शर्मा
देवर्षि कलानाथ शास्त्री रचित संस्कृत नाट्यवल्लरी में ध्वनि प्रभाव/62

पूजा गौतम/प्रो. मीरा शर्मा
धर्मशास्त्रीय वर्ण व्यवस्था एवं सामाजिक प्रबंधन/66

राजकौर
कहानीकार चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी'/68

डॉ. तसनीम पटेल
अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में हिंदी/70

ऐतिहासिकता बनाम बशारत मंज़िल

डॉ. एम. फ़ीरोज़ खान

बशारत मंज़िल मंजूर एहतेशाम का ऐतिहासिक उपन्यास है जिसके केन्द्र में दिल्ली के एक ऐसे ख़ानदान के नवासों और उनकी औलादों की कहानी है, जो 1857 के ग़दर या आज़ादी की पहली लड़ाई में अपनी जान बचाकर भोपाल में आ बसा था। यह ख़ानदान मिर्ज़ा जमाल बेग का था, जिनका परिचय उपन्यासकार ने इस प्रकार दिया है -''संजीदा का जन्म अगस्त 1890 में रियासत भोपाल में हुआ था जहाँ उनके नाना 1857 के ग़दर के बाद दिल्ली से जान बचाकर पनाह लेने में कामयाब हो पाये थे, अपनी बीवी और एक दो वर्षीया बेटी के साथ। उनके तीनों बेटे ग़दर में अंग्रेज़ों के हाथों मारे गये थे। एक सबसे बड़ा 20 वर्षीय जलाल-इसलिये कि उन्होंने नाना को बारहा दोहराते हुए सुना था-कि वह उन बदमाश तिलंगों के साथ मिल गया था जो मुल्क को आज़ाद कराने के नाम पर लूटमार और ख़ुद का फ़ायदा चाहते थे और बाक़ी दो 18 वर्षीय अफ़ज़ाल और 16 वर्षीय बिलाल-इसलिये कि एक के गुनाह की सज़ा कभी-कभी कई बेक़सूरों को भुगतनी पड़ती है।''(मंजूर एहतेशाम, बशारत मंज़िल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 17)

मिर्ज़ा जमाल बेग की बीवी का नाम अमतुल कबीर और बेटी का नाम जहाँआरा था। जहाँआरा जब 15 वर्ष की हुई तो मिर्ज़ा जमाल बेग ने उसकी शादी 40 वर्षीय ज़ीशान अली के साथ कर दी।

''ज़ीशान अली के पिता जुलफ़िक़ार अली ख़ान का सम्बन्ध कानपुर से था और वह सैयद अहमद बरेलवी के फ़िदाई साथियों में थे। सरहद पर उनके साथ लड़ते हुए शहीद हुए थे। उस समय ज़ीशान की उम्र एक साल थी। उनकी माँ का सम्बन्ध भी उस समय के एक नामी गिरामी पढ़े-लिखे ख़ानदान से था। ज़ीशान ने शुरू की तालीम अपने बड़े भाई से पाई थी और उसके बाद अन्य आलिमों से पढ़कर अपनी शिक्षा पूरी की थी। आगे वह अपने पिता की विचारधारा से जुड़कर वलीउल्लाही आन्दोलन का संचालन करने वाले उलेमा के साथ हो गये थे। कानपुर से वह दिल्ली गये थे और 1857 में अंग्रेज़ों के हाथों मरते-मरते बचे थे। दिल्ली को अपनी आँखों से उजड़ते देखने वालों में से एक वह भी थे। दिल्ली से भागकर उन्होंने रामपुर में पनाह ली थी और फिर कुछ समय बाद वहाँ से काकोरी चले गये थे। हालात सुधरने और मलिका विक्टोरिया के माफ़ीनामे के बाद वह कानपुर लौट गये थे और फिर अन्ततः 1865 में कुछ करने की तलाश में रियासत भोपाल का रुख़ किया था। यहाँ पहुँचकर वह एक मस्जिद के हुजरे में ठहरे थे और इत्तिफ़ाक़ से उनकी भेंट मिर्ज़ा जमाल बेग से हुई थी जो न सिर्फ़ उनकी व्यक्तिगत ख़ूबियों से प्रभावित हुए थे बल्कि ज़ीशान अली के परिवार और बुज़ुर्गों को जानते थे। मिर्ज़ा जमाल बेग ने कोशिश की थी कि उनको रियासत में कोई ठिकाने की नौकरी मिल जाये मगर शुरू में इसमें उन्हें कामयाबी नहीं मिली थी। मिर्ज़ा को लगा था कि ज़ीशान की रगों में दौड़ता बुज़ुर्गों का गर्म ख़ून सामान्य तापमान पर आ चुका है और इसका अंदाज़ा उन्होंने ज़ीशान अली के मुँह से सर सैयद की तारीफ़ सुनकर भी लगाया था। उन्होंने उस सलाहियतमन्द आदमी की मदद करने का फ़ैसला कर लिया था और 1870 की सर्दियों में, बावजूद दोनों की उम्रों में बड़े फ़र्क़ के, ज़ीशान अली ख़ान की शादी जहाँआरा बेगम से कर दी गयी थी। तब ज़ीशान की उम्र चालीस और जहाँआरा पन्द्रह साल की थीं। आगे जो हुआ वह इतिहास था और यह शादी ज़ीशान अली ख़ान के लिये बहुत मुबारक साबित हुई थी। मिर्ज़ा जमाल बेग के दामाद की हैसियत से रियासत में उन्हें जल्द ही अच्छी तनख़्वाह की नौकरी मिल गयी थी।''(वही, पृ. 27)

इस लम्बे उद्धरण को देने की ज़रूरत इसलिये पड़ी क्योंकि जिन लोगों की कहानी को इस उपन्यास के केन्द्र में रखा गया है, यही ज़ीशान अली उनके आदि पुरुष थे। जहाँआरा के साथ उनकी शादी सन् 1870 की सर्दियों में हुई थी। उनकी कई औलादों में दो बेटे ही जीवित बचे थे। जुलाई 1871 में पैदा बन्दा अली ख़ान और अगस्त 1890 में पैदा संजीदा अली ख़ान। दोनों भाइयों के बीच ज़ीशान और जहाँआरा की अन्य कई औलादें जीवित न रह पायी थीं। बन्दा अली ख़ान की शादी उनके पिता ज़ीशान अली के भक्त क़ाज़ी कमालउद्दीन की पुत्री माहरू ज़मानी के साथ हुई थी और संजीदा अली की

अमीना बेगम के साथ। संजीदा अली की गुलबदन नाम की एक और पत्नी थी। गुलबदन एक तवाइफ़ थी, जिसके कोठे पर आते-जाते संजीदा अली को उससे मुहब्बत हो गयी थी और जब अमीना बेगम ब्याह कर आयीं तो अपने पति के साथ उसका निकाह करवा दिया। वैसे संजीदा तवाइफ़ों के सम्पर्क से ही स्त्री तक पहुँचे थे। यद्यपि केवल वहीदन और बाद में गुलबदन का ही नाम उनके साथ जोड़ा गया है, लेकिन यह शग़ल किस क़दर उनकी आदत बन गयी थी, इस कथन से स्पष्ट है- ''अखिलेश और असलम के साथ ही संजीदा ने शराब से संगत जोड़ी थी और जीवन में पहली बार, चावड़ी में, बाज़ार का मुजरा सुना था। फिर आगरा, लखनऊ, कानपुर, बनारस, जहाँ-जहाँ उनका जाना हुआ था, गाना सुनने का यह शौक़ उनके साथ गया था, लेकिन लौटकर जब भी दिल्ली आये थे, वहीदन बाई की आवाज़ को उन्होंने इकलौता पाया था।'' (वही, पृ. 93-94) इतना ही नहीं, इस बात को भी प्रकारान्तर से स्वीकार किया गया है कि कोई शायर तभी महानता को प्राप्त करता है जब कुछ शायराएँ उस पर फ़िदा हों। संजीदा अली के मामले में इस भूमिका को निभाया है, कलकत्ते की शायरा सुहासिनी घोष ने और संजीदा अली शायर कैसे हैं इसे उपन्यासकार ने चम्पा, जिसके कोठे पर गुलबदन ने आँखें खोली थी, की ज़बानी इस प्रकार कहलवाया है-''और सोज़ तो शायर हैं इश्क़ो-आशिक़ी के शायर। उनमें उस मर्दानगी का राज़ छिपा है जिसको समझे बग़ैर शायरी नहीं सिर्फ़ अय्याशी की जा सकती है। उस राज़ को समझो।'' (वही, पृ. 114) ऐसे शायर सोज़ यानी संजीदा अली खान इस उपन्यास के इतिहास पुरुष और नायक हैं। इन पर चर्चा थोड़ा ठहर कर करेंगे, पहले उपन्यासकार की खबर ली जाये।

बन्दा अली और माहरू ज़मानी की कुल अट्ठारह औलादें हुईं। इन्हें उपन्यासकार ने उपन्यास के तीसरे खण्ड में पृष्ठ 222-224 पर सूचीबद्ध किया है। इसके अनुसार इन अट्ठारह औलादों में तेरह बेटे और पाँच बेटियाँ थीं। तीन बेटे और एक बेटी की मृत्यु उनके बचपन में ही हो गयी थी। स्वयं माहरू ज़मानी की मृत्यु सबसे छोटी औलाद मंशा अली को जन्म देते समय हुई थी। उधर संजीदा अली और अमीना बेगम की तीन पुत्रियाँ क्रमशः जमीला उर्फ़ बिल्लो, शकीला उर्फ़ बिब्बो तथा ग़ज़ल उर्फ़ खद्दर पैदा हुईं और संजीदा अली व गुलबदन के एक बेटा बुनियाद अली पैदा हुआ। बन्दा अली के सबसे बड़े बेटे ताबन्दा अली के पुत्र हैं, इस तथ्य की पुष्टि के लिये कई दृष्टान्त हैं इस उपन्यास में। उनका उल्लेख करने से पूर्व मैं लेखक का संक्षिप्त जीवन परिचय देना चाहूँगा। लेखक का एक उपन्यास है 'सूखा बरगद'। राजकमल प्रकाशन से इसका पेपरबैक संस्करण 1989 में प्रकाशित हुआ था। इसमें दी गयी सूचना के अनुसार लेखक का जन्म तीन अप्रैल 1948 को भोपाल में हुआ था। इस बात की तसदीक़ इस उपन्यास में लेखक ने इस प्रकार की है- ''मैंने अब्बा के सारे भाई-बहनों को नहीं देखा और एक समय तक तो सिर्फ़ उन्हीं को देखा था जो बँटवारे के समय पाकिस्तान नहीं गये थे। ख़ुद मेरा जन्म सन् 1948, यानी देश की आज़ादी और बँटवारे के बाद भोपाल में हुआ था। मेरे सबसे छोटे चचा, मंशा अली खान मुझसे ग्यारह-बारह वर्ष बड़े थे। उन्हीं को अपनी अट्ठारहवीं सन्तान के रूप में जन्म देते हुए मेरी दादी, माहरू ज़मानी का देहान्त हुआ था।'' (वही, पृ. 217-18) इस प्रकार हम बहुत आसानी से इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि मिर्ज़ा जमाल बेग की पाँचवीं पीढ़ी में इस उपन्यास के लेखक का जन्म हुआ है।

पूरा उपन्यास तीन खण्डों में विभाजित है। प्रत्येक खण्ड में घटनाओं की इतनी ज्यादा 'ओवरलैपिंग' है कि इस विभाजन का कोई विशेष औचित्य दिखायी नहीं देता फिर भी कुछ मूल बातों को रेखांकित करके प्रत्येक खण्ड को एक दूसरे से अलग करके देखा जा सकता है। पहला खण्ड मिर्ज़ा जमाल बेग का दिल्ली से पलायन करके भोपाल में बसने, उनके पुत्रों बन्दा अली ख़ान और संजीदा अली ख़ान के बड़े होने, बड़े बेटे की शादी तथा छोटे बेटे की मँगनी के रूप में रेखांकित किया जा सकता है। इसी खण्ड में बन्दा अली के बड़े बेटे ताबन्दा की पैदाइश, मिर्ज़ा जमाल बेग की मृत्यु, उनकी पत्नी अमतुल कबीर की दिल्ली बशारत मंज़िल में वापसी का भी ज़िक्र किया गया है। ताबन्दा और संजीदा के पिता ज़ीशान अली का उद्भव और पराभव, ताबन्दा का हकीमी के पेशे के बल पर सम्पन्न होते जाना और मुस्लिम लीग से जुड़ना भी इसी खण्ड में चित्रित है। दूसरा और तीसरा खण्ड मुख्य रूप से संजीदा अली पर ही केन्द्रित हैं। इसमें उनकी शादी, पढ़ाई, भाई ताबन्दा अली से नाइत्तिफ़ाक़ी और स्थायी दुराव, शायरी, मुजरेबाज़ी, गाँधी-भक्ति और मुस्लिम लीग की आलोचना और अन्ततोगत्वा अपनी ही बेटियों के द्वारा मारा जाना शामिल है।

उपन्यासकार की असली कसक तो यही है कि उसके ख़ानदान को, जिसने 1857 के ग़दर से लेकर आज़ादी के संघर्ष तक अपनी सक्रिय भूमिका निभाई थी, इतिहास में कोई जगह नहीं मिली, लेकिन उसकी वास्तविक चिन्ता संजीदा अली के प्रति है। वह उपन्यास के शुरू में ही अपनी इस मंशा को ज़ाहिर भी कर देता है। उपन्यास के शुरुआत में अपने दोस्त के साथ बातचीत करते हुए वह कहता है-''महज़ वही लिखना चाहता हूँ, मैंने आश्वस्त करते हुए कहा था- और यही एक सच्ची कहानी लिखना चाहता हूँ, बिना या कम से कम कलाकारी के साथ।

एक व्यक्ति और उसके परिवार की कहानी जो एक ज़माने में हर जगह था। शायरी से लेकर सियासत यानी तुम्हारे शब्दों में हक़ीक़त से लेकर फ़साने तक, हर जगह! लेकिन आज जिसका उल्लेख न तो साहित्य में है न इतिहास में। संजीदा सोज़ और बशारत मंज़िल की कहानी। बिल्लो और बिब्बो की कहानी। ग़ज़ल की कहानी। इन तीनों बहनों की माँ अमीना बेगम की कहानी। सोज़ की दूसरी पत्नी, जो पहले तवायफ़ थी और उसके बेटे की कहानी। सारी कहानियों की जो एक कहानी होती है, वह कहानी मेरी और तुम्हारी कहानी भी उससे बहुत हटकर या अलग नहीं हो सकती। न है।''(वही, पृष्ठ 15) इसके पहले पृष्ठ पर इसी बात को वह इस प्रकार कहता है- ''यह सब भी हो चुका है, मैंने लाचारी में हँसकर कहा था-और मेरी इसी कहानी में हुआ है। मेरा नायक, पता नहीं उसे नायक कहा जा सकता है या नहीं, क्योंकि कहानी उस अकेले की नहीं, बहरहाल शायर भी था और गाँधी-भक्त भी। वह शेर कहता था, मुशायरों में उसकी धूम थी और आश्रम में गाँधीजी के साथ रहकर उसने चरखा चलाना सीखा था। रदीफ़ क़ाफ़िया एक तरफ़, तुनाई-धुनाई-बुनाई एक तरफ़। गाँधीजी के मार्गदर्शन में उसने देशभक्ति का सबक़ सीखा था और शायरी में उसके उस्ताद थे दाग़ देहलवी। दाग़ ने भी उसकी नौउम्री की ग़ज़लें देखकर ही उनमें किसी इस्लाह की ज़रूरत से क़तई इंकार कर दिया था। इक़बाल, हसरत मुहानी, अकबर इलाहाबादी, असगर गोंडवी-यह तमाम शायर उसके समकालीन थे और जोश, जिगर, फ़िराक़, मजाज़ फैज़ की नस्लें उसको तारीफ़ की नज़र से देखतीं और उसके शेरी रवैये की तक़लीद की कोशिश करती थीं। तवायफों में दाग़ के बाद अगर कोई शायर गाया गया तो वही था और सियायत में हकीम अजमल ख़ान और डॉ. अंसारी के बाद मुसलमानों में कोई गाँधी का विश्वासपात्र था तो वही। एक ईमानदार और अपनी तरह का आदर्शवादी जो रोज़ सुबह निकलने से पहले जागकर एक घंटा चरख़ा चलाता और सूत कातता था और अहिंसा की ख़ातिर जो अपनी जान तक देने को तैयार था। इसके साथ ही शाम की नशिस्तों में वह ख़ास दोस्तों के साथ शराब भी पीता था। उर्दू का आशिक़ होने के साथ-साथ वह हिन्दी और देवनागरी का भी चाहने वाला थाः तहज़ीब को वह एक ज़िन्दा शै मानता था और दो क़ौमी नज़रिये कर कट्टर विरोधी था ।''(वही, पृष्ठ 14)

यह संजीदा अली सोज़ की तारीफ़ है, अगले पृष्ठ पर उक्तवत् जिसका उल्लेख उसके बीवी बच्चों के नाम सहित किया गया है, लेकिन इसके बाद इसी पृष्ठ पर इसकी क़ैफ़ियत क्या है, यह निम्न वार्तालाप से स्पष्ट है-

-''कौन था यार? दोस्त ने बेचैनी से पूछा था। वह कम्प्यूटर को उसके हाल पर छोड़कर मेरी बात बहुत ग़ौर से सुन रहा था। -कहीं मिलता है हिस्ट्री की किताबों में किसी ऐसे शख़्स का नामो-निशान?

-मुझे तो नहीं मिलता उसने लाचारी से कहा था।

-मुझे भी, मैंने समझाया था-दो साल बीत गये किताबों के पन्ने पलटते, उसका कोई नामो-निशान नहीं मिलता। न सियासत की दास्तानों में न शायरी और अदीबों के तज़करों में। ऐसा लगता है वह बशर अपने नक़्शे-क़दम भी साथ ही ले गया।

-तुम्हें जो मालूम हुआ, दोस्त की आवाज़ में शको-शुबह फिर दस्तक दे रहा था-वह सब कहाँ से?

-कुछ पुराने काग़ज़ात और डायरियों से, कुछ बचपन में सुनी लोगों की बातों से, कुछ जागते, कुछ रव्वाब में देखे से, कुछ तलाश करते रहने और न पाने से और कुछ बिना खोजे पा लेने से!'' (वही, पृष्ठ 14)

उक्त उद्धरण उपन्यास की शुरुआत में लेखक और उसके किसी कम्प्यूटर ऑपरेटर दोस्त के बीच हुई बातचीत के अंश हैं। दोस्त भारत की आज़ादी की पचासवीं सालगिरह पर कुछ लिखने की सलाह देता है और लेखक उसे बताता है कि वह अपने ख़ानदान की कहानी लिखने जा रहा है जो 1857 के ग़दर से शुरू होकर आज़ादी मिलने से पहले ही ख़त्म हो जायेगी। उपन्यास में इसी तरह का एक वार्तालाप हम और पाते हैं। दूसरे खण्ड की शुरुआत इसी वार्तालाप से होती है। यह पृष्ठ संख्या से 79 से शुरू होकर पृष्ठ संख्या 87 पर समाप्त होता है। यह वार्तालाप लेखक और किसी पोपले मुँह वाले बुज़ुर्ग जो उससे पच्चीस-तीस साल बड़े हैं, के बीच होता है। इनका जो परिचय लेखक ने दिया है वह इस प्रकार है-वह मुझसे पच्चीस-तीस साल बड़े थे, लेकिन उम्र का असर उनकी याददाश्त पर नहीं पड़ा था। उनकी संघर्षपूर्ण ज़िन्दगी का अधिकांश हिस्सा पत्रकारिता में बीता था। मूलतः उर्दू पत्रकारिता। इसके अलावा शौक़िया उन्होंने कहानियाँ लिखी थीं और ढेर सारे रेडियो ड्रामे। उनके लेखन का विषय मुख्यतः विभाजन और भारतीय मुसलमान रहा था और उनके सोच में अपनी तरह का खुलापन था। उर्दू के अलावा वह अंग्रेज़ी और काम-चलाऊ हिन्दी भी जानते थे। एक ज़माने में राजनीति में भी उनका दख़ल रहा था, लेकिन फिर सिमट-सिमटकर लेखन तक ही सीमित हो गया था। विदेश के नाम पर पाकिस्तान के कुछ चक्कर लगाने के अलावा वह कहीं नहीं गये थे, लेकिन सारा हिन्दुस्तान अच्छे से घूम-फिरकर देखा था। इतिहास उनका मनपसंद विषय था।'' (वही, पृष्ठ 79) और यह बुज़ुर्ग अपने बारे में ख़ुद जो कह रहे हैं, वह इस प्रकार है- ''अभी तक तो

आपका लिखा मेरी पैदाइश से भी बहुत पहले का है! मैं पैदा हुआ हूँ कभी सन् 1922-23 में और आपकी कहानी बात कर रही है अभी सन् 1908। की आपके अब्बा हुज़ूर से मेरी जान-पहचान थी, लेकिन थे वह मेरे बुज़ुर्ग। आपके चचा अलबत्ता मेरे दोस्त थे, रव्वाह वह शहज़ादा अली हों, पाइन्दा अली या फिर तंज़ा, इम्तियाज़, सफ़दर और अहमद, आबिद और मंशा। मुझसे बड़े और छोटे, सब मेरे दोस्त थे, और जो ज़िन्दा हैं, वह आज भी दोस्त हैं। मुझे यह भी नहीं मालूम कि आपकी कहानी में उन सब का ज़िक्र है भी या नहीं, और अगर है तो किस हैसियत से है, लेकिन इतना ज़रूर कहूँगा कि यह बन्दा से ताबन्दा आप खूब लाये।'' (वही, पृष्ठ 80) पूरे उपन्यास में इन दोनों पात्रों के परिचय का ख़ुलासा नहीं होता। दोस्त को तो छोड़ा जा सकता है, लेकिन बुज़ुर्ग पात्र का अपना महत्त्व है। इनके बारे में तफ़सील से चर्चा न करना जिज्ञासा एवं सन्देह दोनों पैदा करता है। इस पात्र के महत्त्व का पता इसी से चलता है कि लेखक अपने उपन्यास का शुरुआती खण्ड इन्हें ही पढ़कर सुनाता है। यह सुनाना उनकी राय के लिये भी था और कथावस्तु की तसदीक के लिये भी। बुज़ुर्ग उसे निराश भी नहीं करते। हो सकता है, लेखकीय दृष्टिकोण ये यह सही हो, लेकिन पाठकीय दृष्टिकोण से यह बहुत बड़ी कमी है। आप ऐतिहासिक उपन्यास लिख रहे हैं। इतिहास द्वारा अनदेखा किये गये अपने ख़ानदान के तमाम लोगों को इतिहास में जगह दिलाने के लिये जद्दो-जहद कर रहे हों, लेकिन ख़ुद एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक चरित्र को पाठकों की नज़र से छुपा रहे हों तो इसका औचित्य कैसे सिद्ध करेंगे। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि हर लेखन पाठक के लिये ही होता है, इसलिए उसी का हित सर्वोपरि होता है।

बहरहाल, लेखक के दावे के बावजूद यह उपन्यास केवल संजीदा अली सोज़ और उनके परिवार की कहानी नहीं है। यह ज़रूर है कि संजीदा अली लेखक के पसंदीदा किरदार हैं और यह पसंदीदगी अंध-मोह में तब्दील दिखायी देती है। इसका नतीजा यह हुआ कि संजीदा अली सोज़ की चारित्रिक बुराइयों में भी लेखक को ख़ूबियाँ ही दिखायी देती हैं। ध्यान रहे, संजीदा अली के चरित्र का निष्कर्ष लेखक के अपने विश्लेषण की निष्पत्ति है। यह ऐतिहासिक निष्कर्ष नहीं है क्योंकि लेखक स्वयं स्वीकार कर चुके हैं कि इतिहास और साहित्य दोनों ही संजीदा से अपरिचित हैं, लेकिन इस निष्कर्ष से यदि यह धारणा पुष्ट कर लिया जाये कि उस ज़माने में संजीदा जैसे चारित्रिक बुराइयों को समाज किसी विशेष दर्जे से ताल्लुक़ रखने वाले पुरुष की शान समझकर स्वीकार करता था तो कोई ग़लत नहीं होगा। लेखक ने कुछ स्थलों पर इस तरह के संकेत भी किये हैं। पता नहीं, लेखक के ध्यान में यह बात आयी कि नहीं आयी कि संजीदा की चारित्रिक बुराइयों का बचाव करके उन्होंने सबसे ज्यादा हानि गाँधी की छवि को पहुँचायी है। उन गाँधी की जिनकी प्रशंसा करते हुए लेखक के पास शब्दों की कमी दिखायी देने लगती है। क्या यह मान लिया जाये कि गाँधी संजीदा सोज़ के स्तर के व्यक्ति के लिये मद्यपान और वेश्या-गमन को जायज़ मानते थे और यदि यह कहा जाता है कि वह यह सब छुपाकर करते थे (यद्यपि सचाई यही है कि वह यह सब डंके की चोट पर करते थे) तो उनका गाँधी-प्रेम और देश-प्रेम दोनों धोखा है और संजीदा संदिग्ध चरित्र के व्यक्ति ठहरते हैं।

जैसा कहा जा चुका है यह केवल संजीदा अली सोज़ और उनके परिवार मात्र की कहानी नहीं है। यह लेखक के ख़ानदान की कहानी है। इस ख़ानदान की शुरुआत लेखक के दादा बन्दा अली ख़ान के नाना मिर्ज़ा जमाल बेग से होती है और उसके चाचा संजीदा अली सोज़ की बेटियों बिल्लो और बिब्बो के साथ बशारत मंज़िल में ख़त्म होती है। लेखक स्वयं अन्तिम दृश्य का चश्मदीद गवाह होता है। इसलिये इस कहानी के समापन में वह भी शामिल है। लेखक ने जिस प्रकार पोपले मुँह वाले बुज़ुर्ग की पहचान को छुपाया है उसी प्रकार मंशा अली को छोड़कर उनके द्वारा बताये गये अपने जीवित चाचाओं का ज़िक्र नहीं किया है।

इस प्रकार यह कहानी 1857 से लेकर 1987 तक फैली हुई है। इसमें ग़दर से लेकर आज़ादी के संघर्ष के दौरान अनेक घटनाएँ एवं व्यक्ति अपनी-अपनी तरह से जगह पाते हैं। मिर्ज़ा जमाल बेग के तीन बेटे थे। सबसे बड़ा बीस वर्षीय जलाल और बाक़ी दो-18 वर्षीय अफ़ज़ाल और 16 वर्षीय बिलाल। ये तीनों ग़दर में अंग्रेज़ों के हाथों मारे गये थे। बक़ौल जमाल बेग, जलाल उन बदमाश तिलंगों के साथ मिल गया था जो मुल्क को आज़ाद कराने के नाम पर लूट मार और ख़ुद का फ़ायदा चाहते थे और बाक़ी दो इसलिये कि एक के गुनाह की सज़ा कभी-कभी कई बेक़सूरों को भुगतनी पड़ती है।'' (वही, पृष्ठ17) और जमाल बेग अपनी पत्नी अमतुल कबीर तथा दो वर्षीया बेटी जहाँआरा के साथ दिल्ली से भागकर वाया मेरठ भोपाल में आकर बस गये थे। बक़लम लेखक मिर्ज़ा जमाल बेग कहते थे- ''बदमाश थे वह तिलंगे, सब के सब! एक नवाबी रियासत में वह बिना किसी ख़ौफ़ के कह सकते थे तो कहते थे-उन्हें बादशाह से हमदर्दी थोड़ी थी, शहर लूटना मक़सद था। अपनी आँखों से क्या-क्या देखा है, मत कहलवाओ। उन बदमाशों ने दिल्ली को लूटा और ख़ुश्क कर दिया। दुर्रानी और अबदाली तो बाहर से आये थे मगर यह थी निरी स्वदेशी लुटेरों की पहली

क़िस्म।'' (वही, पृष्ठ 17) मिर्ज़ा जमाल बेग स्वदेशी तहरीक को लुटेरे कहते थे, जिसकी तसदीक़ लेखक ने इस प्रकार की है- ''जब वह यह कहते थे तो लुटेरों से उनकी मुराद वह तमाम लोग होते थे जो हिन्दुस्तान की आज़ादी के बारे में किसी भी तरह कुछ सोच या कर रहे थे। उनकी नज़रों में धीरे-धीरे हुकूमत करने के लायक़ या तो अंग्रेज़ रह गया था या वह राजे-महाराजे जो अपनी रियासतों के हाकिम थे। यह यूँ ही नहीं था कि वह देश में सर सैयद जो भी मुसलमानों के लिये करना चाहते थे उसके सबसे बड़े समर्थक और वकील बन गये थे।''(वही, पृष्ठ 17) इस कथन से यह तो सिद्ध है कि उस समय के राजों-महाराजों, नवाबों, ताल्लुक़ेदारों की तरह मिर्ज़ा जमाल बेग भी अंग्रेज़ों के तरफ़दार थे, लेकिन व्यक्तिगत स्तर एक रईसजादे के अलावा वह किस हैसियत के आदमी थे, उपन्यास सीधे-सीधे इसका ख़ुलासा नहीं करता सिवाय कुछ टिप्पणियों के जो यहाँ उद्धृत की जा रहीं हैं। उक्त उद्धृत कथन जिस पैरा से लिया गया है- ''रियासत भोपाल ने उन जैसे असाधारण व्यक्तित्व-हकीम, शायर, अदीब, आलिम, गणितज्ञ इत्यादि की क़द्रदानी करना ख़ुद अपनी इज़्ज़त का बहाना समझा था और उन्हें हर-हर तरह से रहने-बसने की सहूलियतें दी थीं। न केवल रियासत की शासक बेगमों ने उन्हें अपना निजी हकीम मुक़र्रर किया था बल्कि हर तरह की सुविधाएँ भी उपलब्ध करायी थीं। शहर में उनकी एक खूबसूरत हवेली थी और रियासत में लम्बी-चौड़ी जागीर।'' (वही, पृष्ठ 17-18) ''यह बग़ावत का जज़्बा उनमें भड़का तो हमारे नज़दीक रहने से। हम कितना भी इससे इंकार करें, अपने वजूद से खुरच-खुरचकर फेंकने की कोशिश करते है तो हमारी रगों में तैमूरी और चंगेज़ी ख़ून ही।'' (वही, पृष्ठ 18-19) अपने ख़ानदान के बारे में बन्दा अली ने ख़ुलासा इस प्रकार किया है- ''हमारा ताल्लुक़ उन लोगों से है जिन्हें दुनिया पर हुकूमत करने के लिये पैदा किया गया है। हम अगर तालीम हासिल करने स्कूल या कॉलेज जाते हैं तो महज़ इसलिये कि हुकूमत करने के फ़न और पेशे में जो ज़माने के लिहाज़ से कमी और कमज़ोरी पैदा हो गयी है, उसे दूर कर सकें। हम तिजारत या नौकरी के लिये तालीम हासिल नहीं करते, यह बात हरदम ज़ेहन में रखने की ज़रूरत है।''(वही, पृष्ठ 73) इस तरह की बयानबाज़ी यह बताने के लिये काफ़ी है कि मिर्ज़ा जमाल बेग स्वयं को शासक वर्ग का ही प्रतिनिधि मानते थे और उपन्यासकार ने भी जितनी तेजी से उन्हें सम्पन्न होते दिखाया है उससे यही सिद्ध होता है कि उसने भी उनकी इस स्थिति को स्वीकार कर लिया था।

यह उपन्यासकार ही बताता है कि मिर्ज़ा जमाल बेग अपनी पत्नी अमतुल कबीर और दो वर्षीया बेटी जहाँआरा के साथ जान बचाने की ग़रज़ से दिल्ली से भागकर भोपाल आये थे। पन्द्रह वर्ष की आयु में जहाँआरा की शादी चालीस वर्षीय ज़ीशान अली के साथ हुई थी। (वही, पृष्ठ 27) इसका सीधा-सा तात्पर्य यह हुआ कि 13 वर्षों में ही मिर्ज़ा जमाल बेग अकूत सम्पत्ति के मालिक हो गये। क्या उपन्यासकार यह कहना चाहता है कि पूरा भोपाल पलक-पाँवड़े बिछाकर उनका इन्तज़ार कर रहा था और उनके वहाँ पहुँचते ही राज परिवार सहित उनके क़दमों में बिछ गया, रातोंरात उन्हें मालामाल कर दिया, उनकी अधीनता स्वीकार कर ली, एक भी व्यक्ति उनका प्रतिद्वंद्वी नहीं था, न राज-दरबार में और न ही उसके बाहर। यह इस बात से भी सिद्ध है कि वह जिये तो पच्चासी वर्ष से अधिक, लेकिन उन्हें चुनौती किसी से नहीं मिली और उनके रुतबे का आलम यह था कि जिस ज़ीशान अली को रियासत में ठिकाने की नौकरी नहीं दिलवा सके थे, दामाद बनते ही उसी रियासत में अच्छी तनख़्वाह की नौकरी मिल गयी थी। (वही, पृष्ठ 27) अवसर पाकर ज़ीशान अली चकाचौंध करने वाली तरक़्क़ी की सीढ़ियों पर चढ़ते गये, लेकिन वह जिस जेहादी गतिविधियों में गुप्त रूप से लिप्त थे उसका राज़ फ़ाश हो गया और फिर एक दिन घर से निकले तो कभी वापस नहीं लौटे। (वही, पृष्ठ 29) मिर्ज़ा जमाल की स्थिति में इस उथल-पुथल से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा। जीशान अली के पलायन से परिवार किसी भी दण्डात्मक कार्यवाही से बच भी गया और ज़ीशान अली द्वारा अर्जित सम्पदा भी सुरक्षित रह गयी।

अब इसे मिर्ज़ा जमाल बेग की नियति कहा जाये या सन् 1857 में अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ भड़के आक्रोश की परिणति कि दिल्ली में इसी की वजह से तीन बेटे खो दिये और भोपाल में दामाद, यानी जिन्हें वह लुटेरे कहते रहे वह आज़ादी की जुनूनी पलटन निकली और यह जुनून उनके घर तक पहुँच गयी थी। ज़ीशान अली तो अपने मिशन में इतने गुप्त तरीक़े से लगे थे कि अंतिम समय तक मिर्ज़ा जमाल बेग को इसका पता ही न चल सका। इसके बाद यह सिलसिला उनके दोनों नीतियों तक चला। बड़े बन्दा अली ख़ान मुस्लिम लीग की तरफ़ मुड़े और छोटे गाँधी की तरफ़। दोनों भाइयों में मन-मुटाव इस सीमा तक बढ़ा कि सारे रिश्ते ख़त्म हो गये। मुझे साफ़ दिखायी देता है कि बन्दा और संजीदा को लेकर लेखक विभक्त मानसिकता का शिकार हो गया है। एक सच्चे भारतीय मुसलमान होने के सबूत के तौर पर उसने गाँधीवादी संजीदा की दिल खोलकर पैरोकारी और प्रशंसा की है। जैसा कि पीछे कहा जा चुका है यह पैरोकारी और प्रशंसा अंध-भक्ति की शकल में है और संजीदा की बुराइयों को भी अच्छाइयों की तरह पेश करता है। वह

संजीदा को गाँधी के इतने क़रीब बैठा देता है कि मुझे इतिहास की उस बेचारगी पर तरस आता है जिससे मजबूर होकर वह उनके लिये अपना कोई पृष्ठ ख़ाली नहीं छोड़ सका। उधर बन्दा अली में कोई अच्छाई दिखायी ही नहीं देती। दोनों भाइयों के चरित्रगत विश्लेषण के लिये लेखक ने अपनी बड़ी फूफी फ़रीदा का सहारा लिया है जो कहानी बताकर सिद्ध करना चाहती है कि उसके चाचा संजीदा अली से अच्छा कोई आदमी हो ही नहीं सकता और उसके पिता से बुरा कोई नहीं। अपने पिता के साथ फ़रीदा के स्वयं के रिश्ते बहुत ख़राब हैं इसलिए पिता के बारे में फ़रीदा के आकलन को निष्पक्ष नहीं कहा जा सकता।

बन्दा से फ़रीदा के सम्बन्धों में उत्पन्न कटुता को लेकर जो कहानी गढ़ी गयी हैं वह रोचक कम हास्यास्पद ज़्यादा है। जब बन्दा अपनी माँ जहाँआरा को लेकर हज पर जा रहे थे जो उनकी पत्नी माहरू ज़मानी को चार माह का गर्भ था। उनकी अनुपस्थिति में फ़रीदा का जन्म हुआ था और उसका नामकरण और अक़ीक़ा उनके ससुर द्वारा किया गया था। इससे बन्दा अली इतने ज़्यादा ख़फ़ा हो गये कि ज़िन्दगी भर बेटी को अपने प्यार से महरूम रखा। वही बेटी बड़ी होकर बाप के विरुद्ध अनेक तरह की बातें लेखक को बताती है। वह संजीदा की भी बातें बताती है, लेकिन प्रशंसा के भावबोध में। इस पर तफ़सील से चर्चा करने की ज़रूरत नहीं है, लेकिन क्या बन्दा संजीदा की तुलना में सचमुच बुरे थे, इस सवाल की तफ़सीस करना ज़रूरी है।

पहले संजीदा अली के बारे में बात करते हैं। फ़रीदा उन्हें अमजी नाम से पुकारती है। उनके बारे में अपनी राय व्यक्त करते हुए वह लेखक को बताती हैं-''हमारे ख़ानदान में इकलौते सूफी-मिनश, बादशाह आदमी थे। उनसे ज़्यादा ख़ूबसूरत आदमी हमने ज़िन्दगी में नहीं देखा। सारे जहान का दर्द उनके जिगर में था और ख़ुदा झूठ न बुलवाये, वैसी ही उनकी बीवी अमीना चची थीं। उन दोनों की आपसी मुहब्बत अपने आप में एक मिसाल थी। यह इसके बावजूद कि संजीदा चचा ने माँ के कहने से मँगनी तो कर ली थी मगर शादी को दस साल तक टालते रहे थे। गुलबदन बाई नाम की एक तवाइफ़ ने उन पर ऐसा जादू किया था कि न तो वह किसी दूसरी औरत की तरफ़ देखते थे न उसके बारे में सोचना चाहते थे।''(वही, पृष्ठ 64) यह अपने आपमें कितना बड़ा झूठ है, यह इसी कथन में स्पष्ट है। गुलबदन के होते हुए जो बाद में उनकी दूसरी पत्नी और एक बेटे की माँ भी हो गयी थी, दोनों के बीच बेमिसाल तो छोड़िये, भरोसे लायक़ मुहब्बत भी मुमकिन नहीं और गुलबदन कोई इकलौती तवाइफ़ या औरत नहीं थी संजीदा की ज़िन्दगी में। संजीदा शायर थे और बड़े शायर थे। वह 'दाग' देहलवी के बाद दूसरे ऐसे शायर थे जिनकी ग़ज़लें तवाइफ़ों में सबसे ज़्यादा मक़बूल थीं। वह शराब भी पीने लगे थे, दुनिया जहान में सबसे ख़ूबसूरत थे और मर्दानगी भी कूट-कूट कर भरी थी। संजीदा ने इश्क़ भी फ़रमाया और कोठे दर कोठे जाते भी रहे। वह चारित्रिक रूप से दृढ़ थे, ऐसा कोई दावा लेखक ने भी नहीं किया। वह तो उनकी बुराइयों को ही उनकी पारसाई का सनद मानता रहा। औरतों के बारे में बन्दा अली भी कम लोलुप नहीं थे, लेकिन वह इसे अपने पेशेगत आवरण में छुपाने में सफल थे। लोग केवल शक करते हैं, यकीन के साथ लांछन नहीं लगा सकते। ख़ुद लेखक का यह बयान इसकी तसदीक़ करता है- ''दूसरी ओर आम धारणा थी-कितनी सही, कितनी ग़लत, कहा नहीं जा सकता कि बन्दा अली ख़ान ख़ुद बला के रंगीन मिज़ाज, औरतों के शौक़ीन व्यक्ति थे। उनमें ढेरों ख़ूबियाँ थीं और समाज में उनका महत्त्व ऐसा था कि इस एक कमज़ोरी को भी हँसने-हँसाने के स्तर पर लतीफों के पैराये में ही बयान किया जाता था।'' (वही, पृष्ठ 100) इसके अगले पृष्ठ पर उनकी रुचिजन्य कमजोरियों का बयान करने के बाद यह स्वीकार किया गया है- ''यह सब बातें सुनी-सुनाई हैं और इनको प्रमाणित करने का कोई सबूत नहीं, सिवाए एक मुहावरे के (कि) बिना आग के धुआँ नहीं हो सकता। तो कभी-कभी जितना धुआँ होता है, उतनी आग नहीं होती।'' (वही, पृष्ठ101) निश्चित रूप से यह बयान एक ही बुराई से ग्रस्त दोनों भाइयों में से बन्दा को कम बुरा साबित करता है। इसी प्रकार जायदाद के बँटवारे को लेकर बन्दा अली को बेईमान बताना भी औचित्यपूर्ण नहीं है। यह बन्दा ही थे जिन्होंने पिता और नाना की सम्पत्ति को न केवल सुरक्षित रखा बल्कि उसमें वृद्धि भी की। एक भी दृष्टांत ऐसा नहीं है जहाँ उन्हें सम्पत्ति का दुरुपयोग करते दिखाया गया हो। तमाम नाइत्तिफ़ाक़ियों के बावजूद उन्होंने संजीदा के सामने वित्तीय संकट नहीं खड़ा किया। इसके विपरीत संजीदा केवल पैसे उड़ाते ही रहे। बिना किसी संशय के यह बात सिद्ध है कि बन्दा अली परिवार एवं समाज दोनों के प्रति ज़्यादा ज़िम्मेदार थे जबकि संजीदा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में बेहद लापरवाह।

पूरे उपन्यास का सार-तत्त्व पहले खण्ड के छियत्तर पृष्ठों में ही आ गया है। संजीदा की मँगनी और शादी पर अनावश्यक पन्ने दर पन्ने ख़र्च किये गये हैं। द्विराष्ट्रवाद के सिद्धान्त की आलोचना बड़े ही भोथरे ढंग से की गयी है जबकि यह एक हक़ीक़त है। इसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को पूरी तरह उपेक्षित किया गया है। ऐसा दिखाया गया है, जैसे इसके लिए मुसलमान ही दोषी हों। वास्तविकता यह है कि चाहे द्विराष्ट्रावाद का सिद्धान्त रहा हो चाहे उर्दू का, हिन्दू बुद्धिजीवी क़ाफी लम्बे अर्से

से अपने लेखन के माध्यम से मुसलमानों के विरुद्ध मुहिम चला रहे थे। अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में प्रायः पूरे देश में इस प्रकार का साहित्य लिखा गया जो आज भी उपलब्ध है। यह तथ्य भी उतना ही कड़ुआ है कि प्रतिक्रिया में ही सही, कालान्तर में मुस्लिम रचनाकारों ने भी हिन्दुओं के विरुद्ध खूब लिखा है। संजीदा अली टाइप के चरित्रों की उपस्थिति भी सतत बनी रही मगर वे कभी भी अपना क़द इतना ऊँचा नहीं उठा पाये कि उनकी आवाज़ का कोई बामक़सद असर हुआ हो। हाँ, इतना ज़रूर है कि इसने एक ऐसी पवित्र परम्परा का रूप ग्रहण कर लिया है जो मरने नहीं पाती और उम्मीद क़ायम रहती है। वास्तविकता यह है कि जब तक हिन्दू और मुसलमान के बीच के मतभेद को शब्द 'मतभेद' के दृष्टिकोण से रेखांकित और व्याख्यायित किया जाता रहेगा, यह बुराई के रूप नज़र आता रहेगा और बुराई मिटाने तथा अच्छाई की स्थापना हेतु पवित्र व्याख्यान ही दिये जाते रहेंगे। यह अपने-अपने क़ौम की वैचारिक परम्परा है। इसका एक लम्बा इतिहास है। अपनी यात्रा में यह अनेक प्रतीकों और आख्यानों से रूढ़ होती है। यह अपने-अपने क़ौम की अच्छाइयाँ होती हैं, अपना-अपना सच होता है। नस्लीय संघर्ष हमेशा दो अच्छाइयों के बीच का संघर्ष होता है। फिर किस सैद्धांतिकी से इसका समाधान हो सकता है? समाधान का एक मात्र उपाय एक दूसरे का सम्मान है और ज्ञात इतिहास में कोई भी इसके लिये तैयार नहीं हुआ। न तो व्यक्तिगत स्तर पर और ही सामूहिकता के स्तर पर।

इस देश में अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ आज़ादी के नाम पर जो भी संघर्ष चलाया गया वह देश को आज़ाद करने के नाम पर चलाया गया। यह संघर्ष जनता की आज़ादी के लिये कभी था ही नहीं। सामान्यता देश और जनता को एक करके देखा जाता है जबकि सामान्य जनता हमेशा थोड़े से वर्चस्वशाली लोगों की गुलाम होती है। इस फेनामिना के विरुद्ध केवल बहुजन नायकों ने आवाज़ बुलन्द किया था। उनका मानना था कि सामाजिक आज़ादी के बिना देश की आज़ादी का संघर्ष व्यर्थ है। डॉ. अम्बेडकर इस आवाज़ की अन्तिम कड़ी थे। बिरजू के माध्यम से लेखक ने उनका संज्ञान लिया है। जातिगत स्तर पर बिरजू भंगी हैं। ईसाई मिशनरी के सम्पर्क में आकर उसका मानसिक परिष्कार होता है और वह बिरजू से बी. लाल अमर में रूपान्तरित होकर अम्बेडकर समर्थक के रूप में प्रतिष्ठित होता है। (वही, पृष्ठ 202) यह दृष्टान्त हमें फिर राष्ट्रवाद के सिद्धान्त की ओर ले जाता है, अन्तर केवल इतना है कि यहाँ मुसलमान की जगह अछूत हैं। हिन्दुओं ने मुसलमानों से ज़्यादा अछूतों को ठगा है। मुसलमानों की तो अलग पहचान स्थापित थी। यदि पूना पैक्ट लागू हो जाता तो निश्चित रूप से एक और राष्ट्रीयता का उदय होता और तब आज़ादी ही नहीं, देश का भी एक भिन्न इतिहास होता।

मेरा मानना है कि ऐतिहासिक उपन्यास वह होता है जिसमें पात्र तो इतिहास से उठाये जाते हैं, लेकिन उनका चरित्र-चित्रण रचनाकार के विवेक की निष्पत्ति होता है। यह उपन्यास भी इसका अपवाद नहीं है। इसमें आये हुए पात्रों का व्यवहार निश्चित रूप से उनके ऐतिहासिक क्रिया-कलापों से भिन्न होगा। इतिहास से छूटे हुए पात्रों पर कल्पना का आवरण चढ़ा कर उन्हें औपन्यासिक कृति के माध्यम से प्रस्तुत करने पर उनके साथ ऐतिहासिक न्याय हो सकेगा अथवा नहीं यह सवाल तो अपनी जगह पर रह ही जाता है।

विशेषांक उपलब्ध

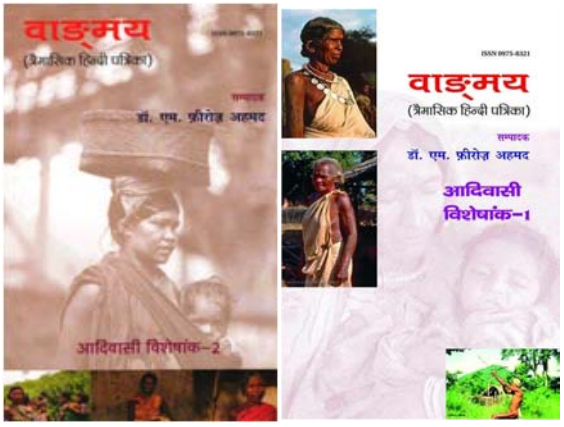

वाङ्मय पत्रिका, अलीगढ़

आदिवासी विशेषांक 1–2

मूल्य– 320 रुपए रजि. डाक से

सम्पर्क– **205- ओहद रेजीडेंसी, नियर पान वाली कोठी, दोदपुर रोड, सिविल लाइन, अलीगढ़-202002, मोबाइल नं. 09044918670**

आदर्श और यथार्थ का अद्‌भूत मिश्रण उपन्यास 'अपवित्र आख्यान'

अंकित

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है जो अपने कुशल वागेन्द्रिय और विकसित मस्तिष्क के कारण सृष्टि के सभी प्राणियों से विशिष्ट है। वह अपनी जिज्ञासु एवं चिंतन वृत्ति के परिणामस्वरूप विकास-पथ पर निरन्तर अग्रसर है। वह लक्ष्यानुगमन की प्रक्रिया में आदर्श व यथार्थ की प्रक्रिया को लेकर सदैव असमंजस्य में रहा है। उसके सामने निरन्तर उचित-अनुचित, सत्य-असत्य, पाप-पुण्य को लेकर द्वंद्व की स्थिति बनी रही है। वह हमेशा इस द्वंद्व में रहा है कि मुझे क्या करना चाहिए? क्या नहीं? वह अपने विकास-पथ में युगपुरुषों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, गुरुओं, महापुरुषों, संतों, मुनियों एवं साहित्यकारों के विचारों से प्रभावित होता रहा है। उसे निरन्तर यह आभास मिलता रहा है कि वह क्या है और वह क्या हो सकता है।

प्राचीनकाल से ही इन महापुरुषों की वाणियाँ उसे आदर्श जीवन जीने का मार्ग दर्शाती रही हैं। वेदों, उपनिषदों, संहिताओं, ऋचाओं, धार्मिक ग्रंथों एवं साहित्य में उद्‌घोषित 'वसुधैवकुटम्बकम' एवं 'सुरसरि सम सबका हित होई' का आह्‌वान इसी प्रस्तुति का ही प्रमाण हैं। आदर्श निर्माण के साथ-साथ प्राचीनकाल से ही साहित्य में यथार्थ की व्यंजना का भी आह्‌वान होता रहा है, जो इसी प्रक्रिया का मुख्य निकष बनकर सामने उपस्थित हुआ है।

दूसरी ओर पाश्चात्य दर्शन व साहित्य में सर्वप्रथम प्लेटो को आदर्शवादी अवधारणा का प्रतिष्ठा स्वीकार किया जाता है जिन्होंने बाह्य जगत् की अन्य वस्तुओं की अपेक्षा प्रत्यय को ही परम् सत्य के रूप में उजागर किया था। उनके उपरांत कांट, शेलिंग, हेगल, स्पिनोजा, शॉपनहावर, लॉक, देकार्त, बर्कले, ब्रैडले, मेटरलिंक आदि ने आदर्श की अवधारणा को पुष्ट करने का काम किया। इसके साथ ही दूसरी ओर आदर्श निर्मिति से परे यथार्थ की उद्‌घोषणा करने वाले विद्वानों का भी पाश्चात्य दर्शन में वर्चस्व रहा है, जिनमें जार्ज लूकाच, बुर्के, लूकस जार्ज, एमिल जोला, विलियम डीन हॉवेल्स आदि का नाम लिया जा सकता है। हम यहाँ इन दोनों अवधारणा के मूल विषयों को जानने के उपरांत इनकी कसौटी पर उपन्यास 'अपवित्र आख्यान' को विश्लेषित करने का प्रयास करेंगे-

यथार्थवाद का अर्थ

सामान्यतः यथार्थवाद के विषय मे कहा जा सकता है कि यह एक ऐसा विचार है जो वस्तु को उसकी वास्तविक स्थिति अर्थात् वह जैसी है वैसी ही एवं उसे ज्यों का त्यों दर्शाने का पक्ष लेता है। ''हिंदी में यथार्थवाद अंग्रेज़ी के 'रियलिज्म' का पर्याय है जिसका अर्थ है वस्तु जैसी है उसका तद्वत चित्रण करना। साहित्य के क्षेत्र में इसका अर्थ है 'जीवन जैसा है उसे वैसा प्रस्तुत कर देना'।''[1] यह विचार मनुष्य के जीवन को उसी रूप में उजागर करने का हिमायती है जिस रूप में वह वर्तमान स्थिति में है। नगेन्द्र अपने साहित्यिक कोश में यथार्थवाद के विषय को स्पष्ट करते हुए कहते हैं ''साहित्यिक आलोचना में उन कृतियों को यथार्थवादी कहा जाता है, जो जीवन का यथावत् चित्रण करती हैं। यथार्थवादी कलाकार की चेष्टा होती है कि उसके द्वारा प्रयुक्त घटनाएँ तथा पात्र यथार्थ जगत् की प्रतिछाया हों। असम्भाव्य तथा अद्‌भुत को वह प्रकृति-विरूद्ध मानकर अपनी कृति में इसका समावेश नहीं होने देता। इस प्रकार यथार्थवाद एक ओर तो आदर्शवाद के और दूसरी ओर स्वच्छन्दतावाद के विपरीत प्रवृत्ति है।''[2]

नगेन्द्र की मान्यता है कि यथार्थवाद के अन्तर्गत किसी भी घटना को उसके वास्तविक रूप से बिना छेड़छाड़ किए दर्शा दिया जाता है, जिससे उस स्थिति का मूल रूप पाठक के सामने उपस्थित हो सके। विलियम डीन हॉवेल्स यथार्थवाद के विषय में लिखते हैं- ''यथार्थवाद वस्तु का यथातथ्य चित्रण है और वास्तविक से न उसे कम होना चाहिए, न बेशी।''[3]

इसके समानान्तर ही परिभाषा देते हुए एमिल जोला लिखते हैं - ''उपन्यासकार अगर किसी वस्तु के गुणगान अथवा किसी की भर्त्सना में लग जाय, तो उसकी कृति अशक्त हो उठती है और जिन तथ्यों को वह पाठक सामने रखने की चेष्टा करता है, वे अपनी सार्थकता खो बैठते हैं। उन तथ्यों का फिर कोई मूल्य नहीं रह जाता क्योंकि वे उपन्यासकार के राग-विराग से अनुरंजित होकर सामयिक महत्त्व के हो जाते हैं और कुछ ही दिनों में उनका प्रभाव कम हो जाता है।''[4]

जोला की मान्यता यह है कि किसी भी रचनाकार को

अपने व्यक्तिगत भावों से परे समाज की वास्तविक के उद्घाटन को प्राथमिकता देनी चाहिए ताकि लोगों के सामने किसी भी स्थिति विशेष का अंकन प्रस्तुत हो सके। साहित्य के अन्तर्गत यथार्थ के उद्घाटन को प्रमुखता से स्वीकारते हुए जयशंकर प्रसाद लिखते हैं-''यथार्थवाद क्षुद्रों का ही नहीं, अपितु महानों का भी है। वस्तुतः यथार्थवाद का मूल भाव है-वेदना। जब सामूहिक चेतना छिन्न-भिन्न होकर पीड़ित होने लगती है, तब वेदना की विवृत्ति आवश्यक हो जाती है। कुछ लोग कहते हैं कि साहित्यकार को आदर्शवादी होना चाहिए और सिद्धांत से ही आदर्शवादी धार्मिक प्रवचनकर्त्ता बन जाता है। वह समाज को कैसा होना चाहिए यही आदेश करता है और यथार्थवाद इतिहास की सम्पत्ति है। वह चित्रित करता है कि समाज कैसा है .....साहित्यकार न तो इतिहासकर्त्ता है न धर्मशास्त्र-प्रेणता।''[5] जयशंकर प्रसाद की मान्यता यही विचारधारा प्रकट करती है कि साहित्यकार को समाज का यथार्थ अंकन सामाजिक के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए। यथार्थवादी रचना करने के कारण ही साहित्यकार को समाज का दर्पण कहा जाता था। प्रसाद मानते हैं कि जो रचनाकार जिस युग व परिवेश में रचना-कार्य कर रहा है उसका सामायिक अवलोकन उसकी रचना में आ जाना चाहिए। इन्सायक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटानिका में भी यह स्वीकार किया गया है कि ''यथार्थवाद एक ऐसा दार्शनिक मत है जो मानता है कि अनुभूति की वस्तुएँ अपने आप में अस्तित्व में हैं जिनका संबंध स्वतन्त्र रूप से हमारे मन से होता है।''[6]

उपर्युक्त विभिन्न मतों पर विचार करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि यथार्थवाद एक ऐसा सिद्धांत है जो किसी भी घटना, वस्तु एवं स्थिति का उसके यथार्थ व वास्तविक रूप में चित्रण को प्रमुखता देता है। यह मुख्यतः वस्तु को ज्यों का त्यों दर्शाने का हिमायती है।

आदर्शवाद का अर्थ

इसके विषय में सामान्यतः कहा जा सकता है कि यह एक ऐसा सिद्धांत है जो वस्तु या घटना को उसके वास्तविक रूप में न दर्शा कर उसे किस रूप में होना चाहिए को दर्शाता है। यह मत किसी भी वस्तु के आदर्श रूप के होने के भाव को प्रमुखता देता है। हिंदी में यह Idealism शब्द का पर्याय है। डॉ. अमरनाथ आदर्शवाद के विषय को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं- ''आदर्शवाद के अनुसार कला और यथार्थ जीवन में अन्तर होता है। यथार्थ जगत् में कुरूपता होती है, परन्तु कला का संसार सौंदर्य का संसार होता है। इसमें यथार्थ जगत् का अनुकरण नहीं होता, बल्कि कवि/कलाकार अपनी संवेदनशीलता के माध्यम से यथार्थ को अपनी प्रवृत्ति के अनुसार सुन्दर रूप में प्रस्तुत करता है।''[7]

डॉ. अमरनाथ की मान्यता यह है कि किसी भी रचनाकार को किसी भी वस्तु के यथार्थ उद्घाटन से परे उसके सुन्दर और कल्याणकारी रूप के उद्घाटन का प्रयास करना चाहिए। उसे समाज के कुत्सित यथार्थ के वर्णन पर ही अपना समय व्यर्थ नहीं करना चाहिए, बल्कि उसे तो पाठक के सामने समाज के भव्य रूप का चित्रण कर उसको वास्तविक रूप में बनाए जाने का आह्वान करना चाहिए। डॉ. नगेन्द्र किसी रचनाकार के लिए आदर्श रूप के उद्घाटन को प्रमुख मानते हुए लिखते हैं- ''कला कृति एवं कलाकार की आदर्शवादिता केवल विश्वास के आधार पर मानव-भविष्य की उज्ज्वल सम्भावनाओं के प्रति आस्था में है।''[8] नगेन्द्र तो यहाँ तक स्वीकारते हैं कि बिना आदर्श उपस्थापन के कोई भी रचना महत्त्वपूर्ण नहीं होती। इन्सायक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटानिका में भी आदर्शवाद के विषय में लिखा गया है- ''दर्शन में आदर्शवाद एक ऐसा सिद्धांत है जो वस्तु की बजाय आत्मा या चेतना की प्रधानता को बल देता है। आदर्शवादी सिद्धांत का तर्क है कि वस्तु के सार से इन्द्रिय-बोध अधिक महत्त्वपूर्ण है। अस्तित्व मुख्य रूप से विचारों का ही होता है और इसे ही अंतिम धारणा के रूप में आध्यात्मिक आदर्शवाद कहा जाता है।''[9]

इनका मुख्य विषय यही है कि व्यक्ति के सामने वास्तविक स्थिति का ही उद्घाटन पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसके सामने वस्तु कैसी होनी चाहिए का चित्रण अत्याधिक आवश्यक है। किसी भी साहित्यिक रचना के लिए यह परम आवश्यक माना जाता है कि वह समाज के सामने एक ऐसा रूप प्रस्तुत करे जो भविष्य में समाज को एक नई सोच व दृष्टि दे सके। किसी साहित्यिक रचना के लिए आदर्शवाद की अवधारणा को आवश्यक मानते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं- ''जो साहित्य मनुष्य को उसके पशु-सुलभ सतह से ऊपर नहीं उठाता, वह साहित्य की संज्ञा ही खो देता है। मनुष्य को हर तरह से उन्नत बनाना, उसे अज्ञान, मोह, कुसंस्कार और परमुखापेक्षिता के दलदल से निकालना और पशु सामान्य धरातल से ऊपर उठाकर उसे प्राणिमात्र के सुख-दुख के प्रति संवेदनशील बनाना ही साहित्य रचना का लक्ष्य होता है।''[10]

द्विवेदी जी तो उसी रचना को साहित्य की श्रेणी में रखने के पक्षधर हैं जो समाज व व्यक्ति का हित कर सके। वह उस रचना को सिरे से खारिज कर देते हैं जिससे पाठकों के विकास में तनिक भी लाभ न हो। वह किसी रचना के लिए आवश्यक मानते हैं कि वह समाज को ज्यों का त्यों न रख कर उसे जिस आदर्श रूप में होना चाहिए का आभास दिला सके। प्रेमचंद साहित्य के स्वरूप का उद्घाटन करते हुए लिखते हैं-''हम

साहित्य को केवल मनोरंजन की वस्तु नहीं समझते। हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।''[11]

विचारक मानते हैं कि वही कृति साहित्य कहलाने की हक़दार है जो व्यक्ति के यथार्थ उद्घाटन पर ही न टिककर उसको आदर्श की ओर परिणत करे। यह रचनाकार के लिए परम् आवश्यक मानते हैं कि वह समाज का केवल वास्तविक अवलोकन ही न कराये बल्कि समाज को कैसा होना चाहिए का भी चित्र प्रस्तुत करे। जैनेन्द्र रचनाधर्म को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-''मैं यह मानता हूँ कि... साहित्य वह है जो यथार्थ से आँख नहीं मींचना चाहता, पर स्वप्न तो आदर्श ....। इसी प्रकार के त्याग द्वारा भोग का उपनिषद् ने भी विधान किया है। साहित्य इस प्रकार आदर्श को यथार्थ से और यथार्थ को आदर्श से तोलता और जोड़ता रहता है।''[12]

जैनेन्द्र की मान्यता यह है कि किसी भी साहित्यकार को न केवल यथार्थ के उद्घाटन पर ही जमे रहना चाहिए और न केवल आदर्श के स्वप्नलोक में खो जाना चाहिए, बल्कि उसे तो यथार्थ के प्रस्तुतीकरण के साथ-साथ आदर्श की झलक भी दिखाते हुए पाठक के सामने एक स्वस्थ भविष्य के निर्माण का आलोक प्रस्तुत करना चाहिए।

उपर्युक्त दोनों मान्यताओं पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी भी साहित्यकार के लिए उसकी रचना में यथार्थ और आदर्श का सम्मिश्रण होना परम आवश्यक है। जहाँ वह एक ओर यथार्थ का उद्घाटन कर समाज की वास्तविकताओं का ब्यौरा प्रस्तुत करता है वहीं दूसरी ओर आदर्श रूप प्रस्तुत कर समाज निर्माण में भागीदारी निभाता है। किसी भी रचना के कालजयी स्वरूप के लिए उसमें इन दोनों का संपृक्त होना आवश्यक है। मैनेजर पाण्डेय इस विषय में लिखते हैं-''जिस यथार्थवादी रचना में सामाजिक यथार्थ की जटिल समग्रता और इतिहास प्रक्रिया में परिवर्तनशील यथार्थ के विकास की दिशा का बोध नहीं होता, तात्कालिक अनुभवों से आगे बढ़कर इनके व्यापक सन्दर्भों की खोज नहीं होती, जीवन के तथ्यों में निहित सत्य की पहचान नहीं होती और अभिव्यंजना की प्रचलित प्रवृत्तियों तथा शैलियों से आगे बढ़कर नये अविष्कारों का कोशिश नहीं होती, वह रचना अपने समय में भी पाठकों को प्रभावित नहीं करती। ऐसी रचना कालजयी क्या होगी।''[13] किसी भी रचना को कालजयी होने के लिए विस्तृत फलक पर समाज का अवलोकन प्रस्तुत करना चाहिए। उसे समाज का वह रूप जो वर्तमान है तो दर्शाना ही चाहिए, बल्कि उसके साथ-साथ जो रूप होना चाहिए का भी बिम्ब प्रस्तुत करना चाहिए। हम यहाँ उपर्युक्त वर्णित दोनों मान्यताओं के संदर्भ में उपन्यास 'अपवित्र आख्यान' का विश्लेषण करने का प्रयत्न करेंगे-

अपवित्र आख्यान : एक अवलोकन

अब्दुल बिस्मिल्लाह विरचित यह उपन्यास समाज पर एक विहंगम दृष्टि डालता है और विस्तृत फलक पर एक ऐसे यथार्थ को उजागर करता है जो प्रत्येक युवा को बेरोजगार कर दर-दर ठोकरें खाने के लिए मजबूर कर देता है। धार्मिक आडम्बरों में फंसी मानवीय भावनाएँ किस प्रकार तार-तार हो रहीं हैं उसका सशक्त हस्ताक्षर यह उपन्यास व्यक्ति को सोचने के लिए मजबूर कर देता है। भाषा के आधार पर बँटा देश, भोजन पर आधारित संस्कृति, धर्म आधारित शिक्षा इस उपन्यास में इंसाफ के लिए मुँह खोले खड़ी है। लोगों को यह आडम्बर किस प्रकार मूर्ख बनने पर मजबूर कर देते हैं इसका स्पष्ट उद्घाटन इस उपन्यास में देखा जा सकता है। यासमीन और जमील के वार्तालाप द्वारा स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-''यासमीन ने अपना पर्स खोला और नकाब निकालकर जल्दी-जल्दी उसे पहनने लगी। जमील हक्का-बक्का रह गया। यासमीन, तुम नकाब ओढ़ती हो? क्यों? यासमीन ने उंगलियों से पल्ला उठाते हुए उसकी तरफ ताका। हिन्दी पढ़ने का यह मतलब तो नहीं होता कि आदमी अपनी तहजीब भुला दे। यह तुम्हारी तहजीब है या डर? क्या मतलब?''[14]

बिस्मिल्लाह समाज के हर उस यथार्थ को पाठक के सामने रखते चले जाते हैं जो उसे सोचने के लिए मजबूर कर देता है। उपन्यास का पात्र जमील भाषा के आधार पर बटे इस देश में व्यक्ति के अस्तित्व की स्थिति को पूर्ण रूप से उजागर करता है। मुसलमान होने पर हिंदी पढ़ना किस प्रकार एक धर्म विरोधी बन जाता है, यह इस उपन्यास को सजीव कर देता है। भाषा के लिए बने धर्म किस प्रकार व्यक्ति के अस्तित्व के लिए ही खतरा बन जाते हैं। किस प्रकार एक मुसलमान के लिए हिंदी पढ़ना लोगों को गवारा नहीं लगता इसको स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-''हाँ, तो जमील मियाँ, आपका क्या ऐम है? किधर जाना चाहते हैं आप? क्यों पढ़ रहे हैं हिन्दी? हिन्दुओं को चूतिया बनाने के लिए...? पता नहीं अकेले में जमील इस तरह के सवाल पूछता है और आँखें बंद कर लेता। आँखें बंद करते ही कई-कई दृश्य उभरते। वह नहीं जानता था कि भाषा के भी अपने धर्म होते हैं या धर्मों की अपनी खास भाषाएँ होती हैं।''[15]

समाज में व्याप्त नैतिकता के व्यर्थ ढोंगों को यह उपन्यास इतने प्रभावी ढंग से उजागर करता कि सभी वास्तविक यथार्थ पाठक के सामने स्पष्ट हो जाता है। इस उपन्यास में यह विषय इतनी प्रभावपूर्णता से स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार एक धर्म के व्यक्ति के लिए दूसरे धर्म से संबंधित पुस्तकों को पढ़ना भी अपराध माना जाता है। एक हिंदू होने पर कुरान पढ़ना और एक मुसलमान होने पर रामचरितमानस पढ़ना किस प्रकार लोगों को भयंकर अपराध लगता है। आज तक बहुत ही कम रचनाओं में इस विषय को स्पष्ट किया गया था, कि किताबों को पढ़ना भी धर्म की मर्यादा के विरूद्ध होता है इस विषय को स्पष्ट कर बिस्मिल्लाह ने समाज के उस सच को स्पष्ट करने का प्रयास किया है जो अब तक अनकहा था। उपन्यास में बिस्मिल्लाह एक जगह स्पष्ट करते हुए लिखते हैं- ''जमील ने बहुत सोचा, बहुत सोचा, मगर उसकी समझ में यह नहीं आया कि वह संस्कृत क्यों न पढ़े? वह रामचरितमानस को छू क्यों नहीं सकता? गाँव में छूत-छात के व्यवहार उसने बहुत देखे थे। ऊँची जात के लोग छोटी जातियों का छुआ नहीं खाते थे। पानी भी नहीं पीते थे। अछूत और मुसलमान उनकी दृष्टि में एक जैसे थे। मगर भाषा? पुस्तक? इन सबका छुआछूत से क्या रिश्ता है।''[16]

यह उपन्यास हर उस अन्याय का पर्दाफाश करता है जो व्यक्ति को दोयम दर्जे की ज़िंदगी जीने के लिए मजबूर करता है। एक व्यक्ति को उसके नाम से पहले उसके धर्म के नाम से जाने जाने की प्रवृत्ति किस प्रकार व्यक्ति के विकास में बाधा बनती है यह इस उपन्यास में स्पष्टता से दर्शाया गया है। एक व्यक्ति का कार्य उसके परिचय का निकष नहीं है बल्कि उसकी जाति, उसका धर्म, उसके परिचय के निकष किस प्रकार व्यक्ति को उपेक्षित बना देते हैं, यह इस उपन्यास में बड़े यथार्थ रूप में उद्घाटित हुआ है। जमील और यासमीन के वार्तालाप द्वारा इसे स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-''ओह, मैं भूल गया था... जमील ने आँखें झुका लीं। यासमीन को बल मिला। ...क्यों नहीं ! कल को यह भी भूल जाओगे कि तुम मुसलमान हो। नहीं, यह तो मैं चाहकर भी नहीं भूल सकूँगा। लोग भूलने ही न देंगे।''[17]

इस उपन्यास के अन्तर्गत अब्दुल बिस्मिल्लाह ने समाज के हर उस यथार्थ को उजागर करने का प्रयास किया है जो किसी भी स्तर पर एक ऐसे समाज के निर्माण में बाधक है जिसमें अन्याय के लिए कोई जगह न हो। एक जगह उस रचनाकार के यथार्थ को उजागर करते हैं जो अपने तन-मन से साहित्य की सेवा को समर्पित है, परन्तु भाषा की राजनीति उसका गला घोंट देती है। इस उपन्यास में एक जगह दर्शाया गया है कि किस प्रकार एक उच्च माने जाने स्थान पर राजनीति के प्रभाव के कारण एक रचनाकार को दूसरे रचनाकार जैसा महत्त्व तो क्या उसका उनके साथ नाम भी नहीं गिना जाता। इस विषय को स्पष्ट करते हुए लेखक लिखता हैं कि- ''देखो, मुझे पहले कह लेने दो। नसीम ने उसे रोका। ऊपर से हम अदीब लोग कुछ भी कहें, अन्दर की तमन्ना यही होती है। माफ करना। तो, क्या तुम सोचते हो कि जयशंकर प्रसाद की कविताओं के साथ तुम्हारी कविताएँ भी कोर्स में रखी जाएँगी? क्यों? क्या लोग मलिक मुहम्मद को भूल गए हैं? जमील भी उठ खड़ा हुआ। मगर जमील मियाँ, यह क्यों भूलते हो कि जायसी साहब सूफी थे... और मैं, तुम हो मुसलमान। आज़ाद हिन्दुस्तान के यानी पाकिस्तानी एजेंट, समझे।''[18]

उच्च शिक्षा में राजनीति के वर्चस्व के यथार्थवादी स्वरूप को बड़े व्यापक ढंग से उपन्यास का केन्द्रीय बिन्दु बनाया गया है। हर पद के लिए किया जाने वाला सौदा, तन और धन के लालच में बिकती शिक्षा का वास्तविक चित्रण इस रचना को रोचक व प्रभावी बना देता है। विद्यालयों को बाज़ार बना देने वाली, शोधार्थी को रखैल बनाने वाली, मेहनत को बेरोजगारी देने वाली हर अन्यायी कड़ी का अब्दुल बिस्मिल्लाह ने वर्णन किया है। शिक्षा के आदि गुरु किस प्रकार अपनी शिष्याओं को अपनी देह सौंपने के लिए मजबूर कर देते हैं यह इस उपन्यास में स्पष्ट रूप से प्रकट होता है। एक कॉलेज में अध्यापक के चयन की प्रक्रिया के माध्यम से इसे स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-''अरे गोली मारिए डॉ. साब जमील को। मैं जो कह रहा हूँ, सुनिए। और हाँ, आपके यहाँ सलेक्शन कमेटी कब हो रही है. .. नवम्बर में न? हेड साहब ने प्रकारांतर से यह जताया कि 'उसका' ध्यान रखकर सुनिए- एक मुसलमान लड़की है। मैं उससे काम कराने जा रहा हूँ- 'हिन्दी के मुसलमान कवियों पर हिन्दू आस्थाओं का प्रभाव' विषय पर...। बस, बस... समझ गए। दक्षिण भारतीय प्रोफेसर बोले। फिर आगे उन्होंने जोड़ा, कन्या सुन्दरी तो है न? और हँस पड़े। साथ ही अन्य दोनों प्रोफेसर भी हँस पड़े। मियाँईनें वैसे भी सुन्दर होती हैं, क्यों डॉ. साब? बिहार वाले प्रोफेसर ने अपने होंठ चाटते हुए कहा तो प्रो. चतुर्वेदी की आँखें तिरछी हो गई। बोले, विशेष कर जब वे बुरके के भीतर से झाँकती हैं। अच्छा, डॉ. साब... बिहार वाले प्रोफेसर ने इधर-उधर देखते हुए जरा धीमी आवाज़ में कहा, ...अन्यथा न लें... क्या नाम बताया उसका... यासमीन... आपने स्वाद लिया है उसका...?''[19]

शिक्षा के क्षेत्र को बाज़ार में बदलती प्रोफेसरों की मानसिकता किस प्रकार एक अच्छे विद्यार्थी को तन व धन सौंपने के लिए मजबूर कर देती है, किस प्रकार एक लड़की विद्यार्थी को प्रोफेसर शिक्षा देने के लिए नहीं, बल्कि उससे देह

सुख के लिए उसे शोध-कार्य में परिणत कराते हैं यह समाज का वह काला सच है जो गुरु के रिश्ते को ही तार-तार कर देता है। एक पत्रिका के सम्पादक तक देह सुख के पीछे किसी लेखक की रचना को महत्त्व देते हैं उनके लिए रचना महत्त्वपूर्ण नहीं बल्कि वे सुन्दरता को देख कर रचना को महत्त्व देते हैं। एक पत्रिका के सम्पादक के माध्यम से इसे स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-''भई कुंज! तुम्हारा भी कोई जवाब नहीं! क्या लौंडियाँ फाँसी है? गोष्ठी के बाद प्रो. जानकी प्रसाद 'कमल' ने 'कुंज' को जब छेड़ा तो बेचारा नवोदित कवि नतमस्तक हो गया। बोला- सर, ये तो आपके लिए है।''[20]

प्रस्तुत उपन्यास हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य के मात्र चित्र खींचने का ही काम नहीं करता बल्कि यह इस यथार्थ से परे इस गंदी राजनीति से मुक्ति का मार्ग भी सुझाता है। एक स्कूल के वर्णन द्वारा उपन्यासकार स्पष्ट करते हैं किस प्रकार इससे निपटा जा सकता है। एक स्कूल के मध्य अधिकतर मुसलमान अध्यापक होते हुए भी वहाँ किस प्रकार लोग आपस में एक-दूसरे को उच्च-निम्न की दृष्टि से देखते हैं, एक-दूसरे को गालियाँ देते हैं तथा अपने को अन्य से श्रेष्ठ समझते हैं। उपन्यास में विभिन्न यथार्थ चित्रों के बीच आदर्श का प्रमाण प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं-''लेकिन प्रिंसिपल साहब, ये तो मुसलमानों का कॉलेज है और स्टाफ में ज्यादातर मुसलमान ही हैं। फिर पालिटिक्स कैसी? जी, इसलिए तो पालिटिक्स है। आप समझे नहीं। अगर हिन्दू-मुसलमान बराबर-बराबर हो जाएँ तो सारी पालिटिक्स भीतर घुस जाए। कहीं मुसलमान माईनटी में हैं, कहीं हिन्दू। इस मुल्क की सबसे बड़ी ट्रेजेडी यही है, जिसे किसी ने नहीं समझा है। किसी ने माने, किसी भी प्राइम मिनिस्टर ... हालाँकि जमाल साहब, मैं पुराना कांग्रेसी हूँ...।''[21]

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने शिक्षा के क्षेत्र में फैले हर भ्रष्टाचार पर अपनी कलम चलायी है। रिश्ते-रिश्वतों में बिकती शिक्षा, नकल प्रणाली, भाई-भतीजावाद, शिक्षकों का अध्यापन कार्य न करके कोई अन्य व्यापारिक कार्यों में संलग्न होना आदि अनेक विषय उपन्यास में सजीव हो उठे हैं। शिक्षकों की हर उस करतूत को व्यापक स्तर पर प्रस्तुत किया किया है जो ज्ञान प्रदत्त करने वाली गुरु परम्परा को धराशायी कर देती है। एक विश्वविद्यालय में नौकरी प्राप्ति की योजना को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-''नकवी साहब बहुत बड़े लीडर हैं। मुख्यमंत्री तक उनकी बात का इन्कार नहीं करते। यहाँ आने पर तुम उनसे मिल लेना। वहाँ के वाइस चांसलर से उनकी बहुत पटती है। अगर वे सिर्फ अपनी एक उँगली का इशारा भी कर दें तो समझो, तुम्हारी जगह पक्की। मैं कल ही उन्हें फ़ोन करता हूँ।''[22]

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने आलोच्य उपन्यास में उजागर किया है कि एक लड़की के लिए किस प्रकार उच्च शिक्षा में प्रवेश प्राप्ति के लिए कभी प्रोफेसरों तो कभी मंत्रियों का बिस्तर गरम करना पड़ता है। बिस्मिल्लाह दर्शाते हैं कि यह वह भेड़िए हैं जो सफेदपोश में हर वक्त उसके जिस्म को लूटने के लिए लालायित हैं। शिक्षण संस्थानों को वेशालय बनाती यह मानसिकता किस प्रकार एक नवयुवती के मन में डर पैदा कर उसे वापस घर की चारदीवारी में रहने के लिए मजबूर कर देती है, इस उपन्यास में अपने लिए इन्साफ की बारी के इन्तज़ार में खड़ी है। उपन्यास में यासमीन के माध्यम से स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-''इतना कहते-कहते नकवी साहब ने यासमीन के सारे कपड़े उतार दिए। यासमीन की ख्वाहिश हुई कि वह सामने के आईने में खुद को देखे, लेकिन नकवी साहब ने इसका मौका उसे नहीं दिया। ये आप क्या कर रहे हैं? यासमीन ने दबी-सहमी आवाज़ में पूछा। कोशिश, कोशिश? हाँ, यह सब कोशिश ही कहा जाता है। यासमीन ने आँखें मूँद लीं।''[23]

इस उपन्यास में अब्दुल बिस्मिल्लाह ने केवल ऐसे ही शिक्षकों का ब्यौरा नहीं दिया है जो शोषण के मार्ग पर हैं बल्कि ऐसे शिक्षकों को भी उजागर किया है जो पूरी मेहनत से अपना कार्य दिल लगाकर करते हैं और इतनी मेहनत के बाद भी उन्हें अपना सारा जीवन तंगी में ही गुज़ार देना पड़ता है। उनकी तनख्वा से घर का ज़रूरी सामान भी नहीं खरीदा जा सकता। वे अपना समस्त जीवन असह्य रूप में गुज़ार देने को मजबूर हैं। आलोच्य उपन्यास में एक ऐसे ही कॉलेज प्रवक्ता जमील के माध्यम से स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-''जमील का दिल बैठ गया। इतने दिनों की नौकरी में चम्मच तक नहीं आ सके घर में। आटा, चावल, दाल, सब्जी-तरकारी वगैरह से जो पैसे बचते, उनसे गृहस्थी की कोई न कोई चीज़ खरीद ली जाती। हाल ही में उसने एक लिहाफ बना लिया था। मुन्नी के लिए स्वेटर अगले महीने की तनख्वाह से खरीदने का विचार था। उसकी खुद की पैंट भी बहुत पुरानी हो गई थी। टेरेलिन का सस्ता वाला कपड़ा हर जगह से भसक गया था।''[24]

एक ईमानदार कॉलेज प्रवक्ता का इतना यथार्थ चित्रण अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। दाल-रोटी की व्यवस्था में जुटा ऐसा अध्यापक अपने शिक्षण के साथ क्या इन्साफ कर पाएगा, हर चीज़ के लिए मात्र संतोष ही कर लेने के लिए मजबूर व्यक्ति का कार्य किस प्रकार उसे भी शोषण के रास्ते पर चलने के लिए बाध्य कर देता है, इसका विशद् वर्णन आलोच्य उपन्यास का मुख्य विषय बन गया है। उपन्यास में राजनीतिज्ञयों के कामकाजी यथार्थ को भी बड़ी बहादुरी और निडरता से स्पष्ट किया गया है। एक राजनेता किस प्रकार जनता को बेवकूफ

बना इसका निरन्तर शोषण करता रहता है। वह हर सम्भव कोशिश करता है कि किसी भी व्यक्ति को वास्तविक सच्चाई का पता न चले। वह जनता में गलत प्रचार कर अपनी प्रभुसत्ता को बनाए रखना चाहता है। जमील और उसकी पत्नी राबिया के माध्यम से स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-''हाँ, हिरन हो तो उसे मारकर खा जाओ और मछली हो तो उसे। आपको हमेशा खाने की चीज़ों के नाम ही याद आते हैं। हमारे अब्बा तो बताते थे 'हे' से हाथी होता है और 'मीम' से महल। वे नेता हैं न इसलिए। क्या मतलब? मतलब साफ है। कोई भी नेता, चाहे किसी पार्टी का हो, कभी नहीं चाहेगा कि जनता को सही बात मालूम हो। यानी, मैं जानता हूँ? राबिया ने ज़रा गुस्से के साथ कहा। जो राजनीति में नहीं है, वह जनता है। ...''[25]

आलोच्य उपन्यास में लेखक ने हर उस विषय को उजागर किया है जो व्यक्ति के शोषण का जिम्मेदार है। लोगों को धर्म का झूठा भय दिखाकर, ईश्वर के नाम का गलत प्रयोग कर लूटने वाली इस समाज व्यवस्था को हिला देने वाला यह उपन्यास अपने आप में प्रशंसनीय है। बिस्मिल्लाह दर्शाते हैं कि किस प्रकार लोग को ईश्वरीय आस्था का वास्ता दिलाकर उससे पैसे ऐंठते हैं-''मन्दिर बनवा रहे हैं, उस आदमी ने कहना शुरू किया, अच्छे मौके पर आए हो...दामाद के नाते आपो का चंदा देय के पड़ी। पुरखों के पाप धुल जाएँगे। जमील का जिस्म अदवाइन की तरह तन गया। किन पुरखों के पाप धुल जाएँगे। कौन थे उसके पुरखे? क्या पाप किया था उन पुरखों ने?''[26]

अब्दुल बिस्मिल्लाह इस उपन्यास में केवल यथार्थ का ही अंकन नहीं करते बल्कि वह एक रचनाकार के वास्तविक उद्देश्य को नहीं भूलकर आदर्श समाज के स्वरूप की कल्पना भी प्रस्तुत करते चलते हैं। एक रचनाकार के लिए समाज का हित व कल्याण आवश्यक मानते हुए उन्होंने समस्त समाज का भला करने वाले के रूप में उसको दर्शाया है। एक जगह पर एक रचनाकार के दायित्व को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-मेरा तो यह मानना है कि लेखक का एक ही धर्म है- मानवता। लेखक न हिन्दू होता है न मुसलमान, वह सिर्फ लेखक होता है।''[27]

'अपवित्र आख्यान' को विश्लेषित किये जाने पर यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि यह उपन्यास दोनों मान्यताओं का अद्‌भूत मिश्रण है जो पाठक सामने समाज की सच्चाइयों के साथ उसकी स्वस्थ निर्मिति का भी मार्ग प्रशस्त करता चलता है। यह उपन्यास अपने आप में एक अद्वितीय रचना जो हर पाठक को सोचने लिए विवश कर देती है कि वह किस प्रकार के समाज का हिस्सा है। वह किस प्रकार की राजनीति से घिरा हुआ है। उपन्यास की विभिन्न मान्यताएँ इसकी प्रासंगिकता को स्पष्ट कर देती हैं।

संदर्भ-

1. जोशी, मृदुल, पाश्चात्य काव्यानुशीलन, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2009, पृ. 130
2. नगेन्द्र, मानविकी पारिभाषिक कोश(साहित्य खंड), नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 1965, पृ. 217
3. पाश्चात्य काव्यानुशीलन, पृ. 129
4. वही, पृ. 130
5. प्रसाद, जयशंकर, काव्य और कला तथा अन्य निबंध, इलाहाबाद, भारती भंडार, 1957, पृ. 121
6. The Encyclopedia of Britannica, 15th edition 2002, Volume-9, Page 974
7. अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2009, पृ. 73
8. मानविकी पारिभाषिक कोश(साहित्य खंड), पृ. 139
9. The Encyclopedia of Britannica, 15th edition 2002, Volume-6, Page-240
10. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, विचार और वितर्क (तृतीय आवृत्ति), इलाहाबाद, साहित्य भवन, 1969, पृ. 75
11. प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद 1967, पृ. 26
12. कुमार, जैनेन्द्र, साहित्य का श्रेय और प्रेय, दिल्ली, पूर्वोदय प्रकाशन, 1956, पृ. 88
13. पाण्डेय, मैनेजर, अनभै साँचा, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 2012, पृ. 71
14. बिस्मिल्लाह, अब्दुल, अपवित्र आख्यान, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2008, पृ. 9
15. वही, पृ. 19
16. वही, पृ. 21
17. वही, पृ. 23
18. वही, पृ. 25
19. वही, पृ. 32
20. वही, पृ. 44
21. वही, पृ. 104
22. वही, पृ. 76
23. वही, पृ. 80
24. वही, पृ. 104
25. वही, पृ. 109
26. वही, पृ. 146
27. वही, पृ. 136

शोधार्थी- हिंदी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

हरिजन गाथा : अग्निपुत्रों का क्रांतिकारी आह्वान

अरूण प्रसाद रजक

नागार्जुन प्रतिबद्ध कवि हैं। उनकी प्रतिबद्धता शोषितों और सर्वहारा के प्रति है। 'हरिजन गाथा' में वे मानवीय मूल्यों के पक्षधर कवि हैं। यह दलित विमर्श के दायरे में राजनीतिक कविता हैं। यह सही है कि उनका प्रेमचंद के समान ही दलित विमर्श या दलितवाद से कोई संबंध नहीं है। असल में वे अत्याचार और जुल्म के ख़िलाफ़ आवाज़ बुलंद करने वाले क्रांतिकारी कवि हैं।

'हरिजन गाथा' मानवीय क्रूरता के प्रतिरोध या प्रतिवाद की आख्यानक कविता है। कविता में आक्रोश मनुष्य द्वारा मनुष्य पर हुए अमानवीय अत्याचार के ख़िलाफ़ अभिव्यक्त हुआ है- ''ऐसा तो कभी नहीं हुआ था कि/हरिजन-माताएँ अपने भ्रूणों के जनकों को/खो चुकी हों एक पैशाचिक दुष्कांड में।''[1] यह पैशाचिक दुष्कांड यह है कि बिहार के बेलछी गांव में सुनियोजित तरीक़े से तेरह हरिजनों को सवर्णों द्वारा तैयार किए गए विराट चिताकुंड में ऐसे झोंक दिया गया था जैसे होलिका दहन में सूखी लकड़ियाँ झोंकी जाती हैं। इस दरिंदगी में थानेदार और प्रशासन भी शामिल थे, जो निरंतर चल रही तैयारियों की अनदेखी कर रहे थे। दूसरी तरफ सवर्ण बिरादरी उल्लास पूर्वक किरासिन के कनस्तर, लकड़ियाँ, उपलों के ढेर, सूखी घास-फूस के पूले जुटा कर विराट चिताकुंड के लिए हँस-हँसकर गड्ढे खोदने लगी थी। 'ऐसा तो कभी नहीं हुआ था।'

कविता के आरंभ में ही नागार्जुन हरिजनों को हरिजन न कहकर मनुपुत्र कहते हैं-''...और, इस तरह ज़िंदा झोंक दिए गए हों/तेरह के तेरह अभागे मनुपुत्र/सौ-सौ भाग्यवान मनुपुत्रों द्वारा''[2] तात्पर्य यह है कि दोनों ही मनु की संताने हैं। फिर भी पिता के एक पुत्र ने दूसरे पुत्र पर इस तरह का अमानवीय व्यवहार कैसे किया? कविता में यह खुलासा नहीं किया गया है कि आख़िर 'सौ-सौ भाग्यवान मनुपुत्रों' को गुस्सा किन कारणों के चलते उपजा? 'तेरह अभागे मनुपुत्रों' का अपराध क्या था? कहीं वे धीरे-धीरे अपने जनतांत्रिक अधिकारों के प्रति संगठित और अचेत तो नहीं हो रहे थे या फिर वे आत्मसम्मान और स्वाभिमान से भरते जा रहे थे? बहरहाल, कविता का मुख्य बिंदु 'झोंक दिए गए तेरह निरपराध हरिजन, सुसज्जित चिता में' मन में भय और सिहरन पैदा करता है। कहीं एक बार शमशेर ने 'हरिजन गाथा' का ज़िक्र किसी अन्य प्रसंग में करते हुए कहा था कि नागार्जुन की इस कविता को पढ़ते हुए हमारा सामना एक महाकवि की संवेदना से होता है, जिसमें अथाह करूणा भरी हुई है।

कविता के दूसरे खण्ड में भविष्य शिशु की चर्चा होती है। बालक का जन्म उसी बिरादरी में पैशाचिक दुष्कांड के बाद होता है। यह शिशु कुछ अजीबो-ग़रीब ढंग से किसी चमत्कारी या जादुई बच्चें की तरह आता है। रैदासी संत ग़रीबदास भविष्यवाणी करते समय शिशु में समतावादी समाज-निर्माण की क्षमता को भांप लेते हैं। ''होगा यह भारी उत्पादी/जुलुम मिटाएँगे धरती से/इसके साथी और संघाती।''[3] यह सबके दुख का साथी होगा। इसके डर से हत्यारे काँपेगे। यह शिशु सबका उद्धार करेगा। शिशु के कंधे पर आगे होने वाली क्रांतियों का भार है। यहाँ नागार्जुन शोषण और शोषकों के ख़िलाफ़ लड़ने वाले एक क्रांतिकारी भविष्य शिशु को कहीं छुपाकर पालने, पोसने का सपना देख रहे हैं। गरीबदास की भविष्यवाणी के मुताबिक इस उत्पादी बालक को माँ के साथ झरिया-फारिया भेज देना होगा। गौरतलब है कि कृष्ण का जन्म भी ऐसी ही परिस्थितियों में हुआ था उन्हें भी सुरक्षित पालने के लिए छुपाकर गोकुल ले जाया गया था। उसी तरह कविता में भविष्य शिशु के रूप में जन योद्धा का जन्म हो चुका है। संत गरीबदास शिशु के हाथ की रेखाएँ देखकर कहता है-''आड़ी-तिरछी रेखाओं में/हथियारों के ही निशान हैं/खुखरी है, बम है, असि भी है/गंडासा-भाला प्रधान हैं।''[4] इस वर्णन से डॉ. विजय बहादुर सिंह इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यहाँ नागार्जुन की जनक्रांति सशस्त्र है। उनका मानना है कि नीतिशास्त्र के अनुसार यह एक तरह से दलितों का प्रतिरोध है। प्रतिहिंसा भी। वे लिखते हैं-''इस कविता का मूल भाव-बोध यही प्रतिहिंसा है। नागार्जुन ने इसे भावावेग में दर्ज किया हो, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। पहले और बाद में भी उन्होंने कई बार यह कहा कि प्रतिहिंसा उनके कवि का स्थायी भाव है। यह कविता उसी भाव से प्रेरित और परिचालित है।''[5] यह सही है कि नागार्जुन यहाँ सशस्त्र

क्रांति का समर्थन करते हैं लेकिन यह प्रतिरोध या प्रतिहिंसा से भिन्न है। नागार्जुन की जनक्रांति के पीछे एक बहुत बड़ा मकसद है- एक समतावादी समाज की स्थापना का, जो प्रतिशोध या प्रतिहिंसा से संभव नहीं है। ग़रीबदास की सारी घोषणाएँ नागार्जुन के समतावादी समाज के सपने का अर्थ ध्वनित करती हैं। यहाँ सामूहिक समाजवादी क्रांति का उद्घोष है। 'बलचनमा' और 'वरूण के बेटे' में भी वे पिछड़ी जातियों की संघर्ष क्षमता और समूहबद्धता की ओर संकेत करते हैं। दलितों, वंचितों की असंगठित भीड़ को वे जुलूस बनने की 'सामूहिक प्रचेष्टा' की प्रेरणा देते हैं। भविष्य शिशु की क्रांति को विजय बहादुर जी ने 'सशस्त्र' घोषित किया, जैसे नागार्जुन का विश्वास क्रांति के शांतिपूर्ण तरीक़े में बिलकुल न था। ध्यान देने की बात है कि यह जनक्रांति सवर्णों की व्यवस्था के विरूद्ध है। दो सौ सालों की राजनैतिक गुलामी से निजात पाने में हमें जितना प्रयास करना पड़ा, उससे कहीं अधिक मशक्कत करनी पड़ेगी शताब्दियों की इस सामाजिक और आध्यात्मिक गुलामी की जंज़ीरों को तोड़ने में। इस लिहाज़ से प्रतिक्रिया में सशस्त्र क्रांति ही हो सकती है और इस मानसिकता को विराट जनक्रांति द्वारा ही समाप्त किया जा सकता है। मार्क्स की यह महत्त्वपूर्ण स्थापना है कि आलोचना का हथियार हथियारों द्वारा की जाने वाली आलोचना की जगह कतई नहीं ले सकता; भौतिक शक्ति निश्चय ही भौतिक शक्ति के द्वारा ही परास्त की जानी चाहिए। मार्क्सवादी कवि मुक्तिबोध ने 'अंधेरे में' कविता में जिस जनक्रांति का आह्वान किया है, उसका चित्रण है-''भयानक वेग से चल पड़े हवा में/दादा का सोंटा भी करता है दांव पेंच. ..एक-एक वस्तु या एक-एक प्राणग्नि बम हैं,/ये परमास्त्र हैं, पक्षेपास्त्र हैं, यम हैं।''[6] मुक्तिबोध की इन पंक्तियों में भी नागार्जुन की उपरोक्त पंक्तियों के समान 'सशस्त्र' क्रांति का ऐलान है। सशस्त्र क्रांति पर भी नागार्जुन की क्रांति सच्चे अर्थों में एक समाजवादी क्रांति है। डॉ. विजय बहादुर सिंह यह भी कहते हैं-''यह संदेश परकता कहीं न कहीं हमें उस नक्सलवाद तक ले जाती है जो सशस्त्र क्रांति के मार्फत अन्याय पीड़ित वर्गों की मुक्ति का आकांक्षी है।''[7] नागार्जुन सामाजिक-आर्थिक विषमता विहीन एक समाजवादी समाज के भविष्य के सपने अपनी आँखों में संजोए हुए थे जो उस भविष्य शिशु में जीवित है। वे युग की सीमा को भेदकर भविष्य की ओर इशारा करते हुए कहते हैं कि 'दलित माओं के सब बच्चे अब बागी होंगे', 'अग्निपुत्र होंगे वे'। यहाँ 'बागी' और 'अग्निपुत्र', 'प्रतिहिंसक' या 'नक्सल' का प्रतिरूप नहीं है। नागार्जुन भली-भाँति जानते थे कि निम्नवर्ग की लड़ाई प्रतिशोध या प्रतिहिंसा के लिए नहीं होती बल्कि शोषणविहीन समतावादी समाज की स्थापना के लिए होती है। इसलिए वे कहते हैं-''सबके दुख में दुखी रहेगा/सबके सुख में सुख मानेगा/समझ-बूझकर ही समता का/असली मुद्दा पहचानेगा।''[8] समझ-बूझकर समता का मुद्दा पहचानने वाला ही नये वेद, नयी ऋचाओं का निर्माता हो सकता है न कि नक्सली-''दिल ने कहा-अरे यह बालक/निम्न वर्ग का नायक होगा/नई ऋचाओं का निर्माण/नये वेद का गायक होगा।''[9] यहाँ सामंतवाद के विरूद्ध जनतांत्रिक आंदोलन की आवाज़ है। जो वेद, ऋचाएँ सामंतों के कब्जे में हैं, नागार्जुन उन्हें जन-जन तक पहुंचाना चाहते हैं। परमानंद श्रीवास्तव बिल्कुल ठीक लिखते हैं-''हरिजन गाथा सीधे सामंतवाद के लिए चुनौती है।.....उपभोगवादी सामंतों के लिए हत्या, आगजनी, बलात्कार सब क्षम्य हैं। यहाँ 'हरिजन गाथा' उसी उत्पीड़न का प्रतिवाद है। शब्द भी यहाँ हथियार जैसे हैं। मार्क्स ने कभी दरिद्रता का दर्शन लिखा था। यहाँ प्रतिवाद का दर्शन है-पर गूढ़ नहीं, स्पष्ट-प्रखर, उत्तेजक!''[10]

सही तौर पर 'हरिजन गाथा' में शोषण के ख़िलाफ़ संघर्ष करने के लिए 'अग्निबीजों' का क्रांतिकारी आह्वान किया गया है। अग्निपुत्रों के सिंहावलोकन से ही समतावाद का प्रचार संभव है। यह समता सिर्फ हरिजन और सवर्णों के बीच की ही नहीं, बल्कि एक साम्यवादी शोषण मुक्त समाज की स्थापना का व्यापक मुद्दा है।

संदर्भ-

1. नागार्जुन, हरिजन गाथा, (सं.) सिंह, डॉ. नामवर, नागार्जुन की प्रतिनिधि कविताएं, सातवीं आवृत्ति-2004, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. 137
2. वही, पृ. 138 3. वही, पृ. 140 4. वही, पृ. 142
5. सिंह, डॉ. विजय बहादुर, हरिजन गाथा से पहले : हरिजन गाथा के बाद, (सं.) श्रीवास्तव, परमानंद, नागार्जुन : मूल्यांकन-पुनर्मूल्यांकन, संस्करण-2006, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 104
6. मुक्तिबोध, अंधेरे में, (सं.) वाजपेयी, अशोक, गजानन माधव मुक्तिबोध की प्रतिनिधि कविताएं, संस्करण-1991, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. 167
7. हरिजन गाथा से पहलेःहरिजन गाथा के बाद, पृ. 108
8. नागार्जुन, हरिजन गाथा, पृ. 140-141
9. वही, पृ. 142
10. श्रीवास्तव, परमानंद, अग्निपुत्र होने का अर्थ, (सं.) श्रीवास्तव, परमानंद, नागार्जुन : मूल्यांकन-पुनर्मूल्यांकन, सं. 2006, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 128

***20 पी. बी. एम. रोड, चाँपदानी, जिला-हुगली (प. बं.)* 712222**

डॉ. भीमराव अम्बेडकर का व्यक्तित्व एवं सामाजिक परिवर्तन में उनका योगदान

डॉ. हरिनाथ

बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर भारत के लाखों भूले बिसरे लोगों, दबे-कुचले अछूतों, सताए एवं दबाए गए लोगों तथा समाज के तिरस्कृत वर्ग के प्रबल पक्षधर उनके अधिकारों व विशेषाधिकारों के लिए संघर्ष करने वाले योद्धा, असाधारण विद्वान, योग्य प्रशासक, महान संविधानवेता, साहित्यिक प्रवक्ता, कूटनीतिज्ञ और बीसवीं शती के महानतम् बुद्धिजीवी थे।

इस महान् विभूति का जन्म 14 अप्रैल 1891 ई.[1] को महू छावनी में (वर्तमान मध्यप्रदेश में) हुआ था। वह सूबेदार रामजी सकपाल और भीमाबाई की चौहदवीं संतान थे। इनकी शिक्षा का क्रम बहुत विस्तृत है। इनकी प्राथमिक शिक्षा 1896 ई.[2] में दापोली के प्राइमरी स्कूल से आरम्भ हुई तत्पश्चात् ''1901 ई. में इनका परिवार बम्बई चला आया यहाँ पटेल (बम्बई) के मराठा हाईस्कूल में 1905 ई. में पाँचवीं कक्षा में प्रवेश लिया। यहाँ से जल्दी ही वे मुम्बई के ही एलफिन्स्टन आ गए जहाँ उन्होंने पाँचवीं से सातवीं तक की पढ़ाई पूरी की। उन्होंने स्कूल छोड़ दिया और 1907 में बम्बई यूनिवर्सिटी की मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की। 3 जनवरी 1908 को उन्होंने बम्बई के ही एलफिन्स्टन कॉलेज में दाखिला लिया और जनवरी 1913 में फ़ारसी और अंग्रेज़ी विषयों के साथ मुम्बई विश्वविद्यालय से बी. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में अनेक कीर्तिमानों को संजोते हुए उन्होंने 2 जून 1915 को अर्थशास्त्र को लेकर कोलम्बिया विश्वविद्यालय से एम. ए. किया इसी विश्वविद्यालय से 1917 ई. को उन्होंने पीएच-डी. की उपाधि प्राप्त की।''[3] एक अन्य जून 1921 ई. में लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स एण्ड पॉलिटिकल साईंस में इनका शोध प्रबन्ध स्वीकार कर लिया गया।[4] मार्च 1923 ई. को डी. एस. सी. की डिग्री के लिए लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स ने 'रुपये की समस्या उसका उद्भव और समाधान' विषय पर उनका शोध प्रबन्ध स्वीकार किया गया। यह उपाधि प्राप्त करने वाले वह पहले भारतीय थे। ''जून 1952 को कोलम्बिया यूनिवर्सिटी में एक विशेष दीक्षांत समारोह में उन्हें डॉक्टर ऑफ लॉज की मानद उपाधि से विभूषित किया उन्हें 'संविधान का निर्माता, मंत्रिमण्डल तथा राज्य परिषद् (काउसिंल ऑफ स्टेट्स) का सदस्य भारत का एक अग्रणी नागरिक एक महान् समाज सुधारक और मानव अधिकारों का एक साहसी समर्थक बताया।''[5] 12 जनवरी 1953[6] को उस्मानिया यूनिवर्सिटी हैदराबाद, दकन ने उनकी विशिष्ट स्थिति एवं उपलब्धियों के लिए उन्हें डी. लिट्. की मानार्थ उपाधि प्रदान की।

अनेक विलक्षण गुणों के धनी बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर का व्यक्तित्व आकर्षण से युक्त प्रेरणा का स्त्रोत कहा जा सकता है। व्यक्तित्व का निर्माण अपने आप में एक जटिल प्रक्रिया है किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माण और विकास में जिन तत्त्वों का योगदान होता है, उसमें प्रमुख है परिवार, स्कूल और सामाजिक परिवेश इसके अतिरिक्त व्यक्तित्व निर्माण में धार्मिक-आर्थिक और मनोवैज्ञानिक कारकों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। निस्संदेह यह एक अत्यंत लम्बी, जटिल और दुरूह प्रक्रिया है। कोई कुछ भी कह ले किन्तु किसी दूसरे व्यक्ति (पुरुष अथवा महिला) की जिस बात की ओर सबसे पहले ध्यान जाता है वह होती है उसकी शक्ल-सूरत। उसके बाद और बातें आती हैं। किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व, बुद्धिमता, आकर्षण और गर्मजोशी किसी सम्बन्ध के बनने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध होते हैं।

भारतीय संविधान निर्माता एवं स्वतन्त्र भारत के पहले कानून मंत्री बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर बीसवीं शताब्दी के सबसे उल्लेखनीय गतिशील व्यक्ति और आकर्षक व्यक्तित्व के स्वामी थे, जिन्होंने तीन दशकों से भी अधिक समय तक भारतीय परिदृश्य में अपना दबदबा बनाए रखा। अपनी जनता का जितना प्यार उन्हें अपने जीवनकाल में और मरणोपरांत मिला, निकट इतिहास में उतना किसी अन्य नेता को नहीं मिला। वह एक मेधावी, उधमशील, संयमी और स्वाभिमानी व्यक्ति और अपने भाग्य के स्वयं निर्माता थे। जैसे एक कहावत है कि ''नदी अपना रास्ता खुद ढूंढ़ती है'' यह बात डॉ. अम्बेडकर के जीवन में सबसे अधिक स्टीक रूप से चरितार्थ होती है। अपनी विलक्षण प्रतिभाओं, चारित्रिक बल और कर्त्तव्य-बोध के बूते पर उन्होंने एक ऐसे गतिशील व्यक्तित्व का निर्माण किया था, जिसकी अमिट छाप साक्षात्कार करने वाले व्यक्ति

पर पड़ती थी। इस विलक्षण व्यक्तित्व ने समाज के एक ऐसे वर्ग पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ा, जिसका भारत में युगों से दमन होता आया था। डॉ. अम्बेडकर जिस व्यक्तित्व के स्वामी थे, वह इतना विशाल था कि उसका पारंपरिक शब्दों में वर्णन करना अथवा उसे संक्षेप में बताना संभव नहीं है। ''जीवन की संध्या में बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के व्यक्तित्व की सौम्यता और शान में वृद्धि कर दी। जो भी उनके संपर्क में आता, उनके शानदार व्यक्तित्व से अत्यंत प्रभावित होता और दंग रह जाता था। उनके पास बेहतरीन ढंग से सिले ऊनी और सूती कपड़े, हैट और टोपियां, फर्नीचर और घरेलू उपयोग का सामान, जग-कुर्सियां, बड़े-बड़े पेन, विशाल पुस्तकालय, शानदार कार, अलग-अलग ढंग के जूते और बूट, ढेरों तस्वीरें और कलाकृतियाँ थी। उनका रहन-सहन ऐसा ही था। उनकी ये सारी वस्तुएँ केवल विलास की अभिव्यक्ति नहीं थी, बल्कि उनके उस विजयी व्यक्तित्व की प्रतीक थी, जो तमाम बाधाओं को तोड़ता हुआ अब तक आगे बढ़ता रहा जब तक उसे यह एहसास नहीं हो गया कि उसने वह सब कुछ हासिल कर लिया है, जिसे वह अपनी दुनिया में जीतने के योग्य था।''[7]

उनके विशाल पुस्तकालय में लकड़ी की बीसियों अलमारियों और रैकों की कतारें, उनके कपड़ों के लिए स्टील की अलमारियाँ, उनकी महत्त्वपूर्ण फाइलें रखने के लिए स्टील की खानेदार तीन और अलमारियाँ, उनके मंहगे फाउंटेन पेन और पेंसिलें रखने के लिए स्टील की एक छोटी-सी पेटी, लिखने की खूबसूरत अनूठी मेज, झूलती आराम कुर्सियां, जज कुर्सियां, खाने की मेज, सिंगार मेज, क्रोकरी, दीवार घड़िया, कलाई और मेज घड़िया, फ्रिज, रूम कूलर, लकड़ी के कुछ बक्से, कार, सोफा सेट्स, छोटे-बड़े अनगिनत फर्नीचर और घरेलू उपयोग का सामान ये सब वस्तुएं उनकी जीवन शैली का परिचय देती थी और उनके व्यक्तित्व को और भी अधिक आकर्षक बनाती थी। उनकी देहयष्टि अत्यंत ठोस और विशाल थी। वह गम्भीर ओजस्वी, मजबूत, सुन्दर, प्रभावशाली, स्वतन्त्र और शक्तिशाली थे और देखने में बुद्धिजीवी लगते थे। वह भारी भरकम शरीर वाले थे उनका चेहरा अंडाकार था और उस पर कठोरता विराजमान रहती थी। उनकी खोपड़ी गंजी थी तथा उस पर पतले खिचड़ी बाल थे।''[8] साफ रंग, चौड़े कंधे, अद्‌भुत शक्तिशाली और केशविहीन सीने और आकर्षक मुस्कान वाले डॉ. अम्बेडकर की सबसे मोहक विशेषता थी, उनके सटीक नैन-नक्श और शरीर कोमल त्वचा, सीधी टांगे और भुजाएँ थोड़ी बड़ी उगलियाँ और बाहर को निकला पेट। इससे उनका व्यक्तित्व और भी विलक्षण हो गया था। उनका हास्यबोध, उनके शौक, हाजिर जवाबी और बुद्धिमानी, क्रोधी और किसी उद्‌देश्य के प्रति उनका संकल्प भी उनके व्यक्तित्व के अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंग थे और जीवन में उनकी महत्त्वाकांक्षा का संकेत देते थे। बचपन में उनका कुछ समय अमोद-प्रमोद में भी बीता। कभी-कभी वह क्रिकेट और फुटबाल खेलते और टीम का नेतृत्व करते थे उनकी लम्बाई पाँच फुट सात इंच थी। उनका वजन एक सौ अस्सी पौंड के लगभग था। बीमारियों खान-पान और शारीरिक दुर्बलता के कारण यह पाँच पौंड इधर या उधर होता रहता था। उनका भव्य मस्तक अधिकार वाले पदों पर पहुंचने और लगातार उपलब्धियाँ हासिल करते रहने की उनकी उच्च महत्त्वाकांक्षा का संकेत देता है।''[9]

उनकी बेधती, वाचाल, सशक्त, सुन्दर और पैनी आँखें चमकदार और जीवन तथा ज्ञान की अमिट प्यास से भरी थी। उसमें सुदूर भविष्य की घटनाओं को पहले से देख लेने की अद्‌भुत क्षमता थी। उनकी आँखों में एक आसाधारण चमक थी, जिसका सामना करना हर किसी के लिए आसान ही था। वह अंग्रेज़ी, हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी, मराठी और संस्कृत जैसी कई भाषाएं जानते थे और इन सभी पर उनका समान अधिकार था। वह हर प्रकार के नशे से दूर थे। वह कई अख़बार पड़ते थे और नियमित रूप से रेडियो पर ख़बरें सुनते थे। इस प्रकार वह देश और विदेश में होने वाली घटनाओं से अपने आपको अवगत रखते थे। उन्हें कविता, कला, संगीत प्रकृति, वायलिन, चित्रकृतियों और पालतू पशुओं से प्यार था। वह एक अच्छे कलाकार भी थे। इस महान् विभूति का महापरिनिर्वाण 5 दिसम्बर 1956 ई. में हुआ।''[10]

बाबा साहेब विद्वता साधु स्वभावता, परिश्रमशीलता अछूतों के लिए कष्ट निवारण के लिए करूणा और संघर्षशक्ति और सबसे बढ़कर सच्ची मानवता की साक्षात् मूर्ति थे। डॉ. अम्बेडकर एक युग पुरुष थे उन्होंने सामाजिक परिवर्तन में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के भारतीय राजनीति में उदय के पूर्व समाज के एक बड़े वर्ग दलितों, दबे-कुचलों, अछूतों, शोषितों, वंचितों, बहरे-गूगों, बुभुक्षितों, नंगों, नारियों, नंगे पैर वालों के साथ जीवन के हर क्षेत्र में दुर्व्यवहार होता था। यहाँ तक कि उनके स्पर्श को भ्रष्ट माना जाता था और उनकी परछाई पड़ने से भी पवित्रता नष्ट हो जाती थी। चातुर्वर्ण्य व्यवस्था, जो पूरी तरह असमानता, अन्याय भेदभाव और शोषण का सिद्धान्त थी, उन दिनों अपने चरम सीमा पर थी और किसी न किसी रूप में उठ खड़ी होती थी। मनु के काले कानून व्यापक रूप से प्रचलित थे और उन्हें अपने सबसे खराब स्वरूप में व्यवहार में लाया जाता था। उस समय दलित एक बेहद दयनीय दिशा में जी रहे थे जो इस तथाकथित पवित्र भूमि पर बिल्लियों, चूहों, कीड़े-मकोड़ों, कुत्तों और

पशुओं से भी बदतर थी। बाबा साहेब ने उन्हें अपंगता से मुक्ति दिलाई, गहरी निंद्रा से जगाया, अज्ञानता और गुलामी के जिस अंधकूप में वे जन कराह रहे थे, उससे बाहर निकाला, दिन का उजाला दिखाया उनके अन्दर अपने सामान्य अधिकारों और विशेष अधिकारों के बारे में भी जागरूक बनाया, मानव गरिमा का भाव जगाया, उनके मस्तिष्क में भरे भय को निकाला, विकास में बाधक पुरानी जड़ों और सड़ी-गली तथा मूर्खतापूर्ण मान्यताओं को उखाड़ फेंका तथा उन्हें उनके पैरों पर खड़ा कर दिया। दलितों के उत्साहहीन और निम्नता से ग्रस्त मस्तिष्क में उन्होंने शक्ति और साहस का संचार किया, उनकी क्षतिग्रस्त मांसपेशियों में शक्ति का संचार किया, अपने आदर्श और लक्ष्य निर्धारित किए तथा आंदोलन, संघर्ष और त्याग का शंखनाद गुंजायमान किया। उन्होंने उनके मन में राज करने की उत्कंठा पैदा की, न कि उन लोगों की प्रजा बने रहना, जिन्होंने अनगिनत सदियों से उनका शोषण किया। सही मायने में डॉ. अम्बेडकर का दलित संघर्ष हर प्रकार की सामाजिक और भौतिक असमानता, अन्याय, शोषण, भेदभाव, आडम्बर, दलन तथा अमानवीयता के विरूद्ध था।

स्वतंत्र भारत में उनकी विशिष्ट सेवाओं का कीर्तिमान किसी दूसरे से कम नहीं था। हिंदुत्व की जड़ परम्पराओं को स्वच्छ करने का उनका समाज-सुधारक उत्साह और समय के साथ सड़ गल गई आधारशिला को पुनर्निर्मित करने का उनका प्रयास अतुलनीय था। वह नारी-हितों के लिए भी संघर्ष करते रहे।

डॉ. अम्बेडकर ने समस्त पीड़ित मानवता के लिए अनवरत कार्य किया, चाहे वह हिन्दू, मुस्लिम, इसाई, बौद्ध, जैन या सिक्ख कोई भी रहे हों। उन्होंने कठोर परिश्रम किया और उनकी आवाज़ गूंगे-बहरों, भूखे-नंगों और अंपगों की आवाज़ थी। उन्होंने अपने जीवन की महत्त्वाकांक्षाओं और उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए बाधाओं के बावजूद निरंतर संघर्ष किया। अपने राजनीतिक जीवन में उन्होंने कभी भी अपने विरोधियों के विरूद्ध बदले की राजनीति नहीं की। उन लोगों के विरूद्ध भी नहीं, जिन्होंने समय-समय पर उन पर अत्याचार किए थे। उनके दिमाग में एक ही और वही एक विचार सदा ही कौंधता था कि किस प्रकार उनके दबे-कुचले भाइयों जिनके मध्य वह स्वयं जन्मे थे, की अच्छी सेवा की जाए और इस तरह पूरे देश की सेवा करने के लिए क्या किया जाए? अंतिम साँस तक उनके मन-मस्तिष्क में बना रहा।[11]

डॉ. अम्बेडकर के निधन का दुखद समाचार सुनते ही भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उनकी प्रशंसा करते हुए लोकसभा में कहा, वह भारत के सताए गए, दबे-कुचलों के प्रमुख पक्षधर थे। मुख्यतयाः हिन्दू समाज में पद्दलित कहलाने वाले दुर्गुणों के खिलाफ विद्रोह के प्रतीक के रूप में याद किए जाएंगे।[12]

निःसन्देह डॉ. अम्बेडकर दलितों के मसीहा के रूप में उदित हुए थे। वह महानतम् राष्ट्र-निर्माताओं में से एक थे और सामाजिक समानता के महान् योद्धा थे। बाबा साहेब विद्वता साधु स्वभावता, परिश्रमशीलता, अछूतों के कष्ट निवारण के लिए करुणा और संघर्ष-शक्ति और सबसे बढ़कर सच्ची मानवता की साक्षात् मूर्ति थे। उनके लिए निम्नलिखित काव्य पंक्तियाँ सटीक है- दुष्टों का जो अभिशाप था, दुखियों का माई बाप था,/तुलना न जिसकी हो सके उपमा वह अपनी आप था।/वह भीम माँ का लाल था, वह राम जी का बाल था,/वह बाबा भीमराव था, वह देश का प्रतिपाल था।[13]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि विलक्षण प्रतिभा के धनी भारत के दलित समुदाय के निर्भीक अग्रदूत डॉ. भीमराव अम्बेडकर की गर्जनामय आवाज़ें सदियों तक गूंजती रहेंगी और हमें पीड़ित मानवता की सेवा करने के लिए प्रेरित करती रहेगी।

संदर्भ-

1. विद्या वाचस्पति सोहनलाल शास्त्री, बाबा अम्बेडकर साहब के सम्पर्क में पच्चीस वर्ष, सिद्धार्थ साहित्य सदन, नई दिल्ली, 1975, पृ. 229
2. डॉ. अम्बेडकर एण्ड सिग्निफिकेस ऑफ हिज मूवमेंट, के. एन. कदम, पृ. 90
3. डॉ. अम्बेडकर कुछ अनछुए प्रसंग, नानक चन्द रत्तु, सम्यक् प्रकाशन, नई दिल्ली 2003, पृ. 23-24
4. पी. ई. एस. मिलिंद महाविद्यालय, औरंगाबाद स्मारिका, दिसम्बर-1963, पृ. 15
5. डॉ. अम्बेडकर : लाइफ एण्ड मिशन, धनंजय कीर, दूसरा संस्करण पृ. 440
6. वही, पृ. 443
7. डॉ. अम्बेडकर कुछ अनछुए प्रसंग, पृ. 49
8. वही, पृ. 49-50
9. डॉ. अम्बेडकर लाइफ एण्ड मिशन, पृ. 464
10. विद्यावाचस्पति सोहनलाल शास्त्री, बाबा साहब अम्बेडकर के सम्पर्क में पच्चीस वर्ष, पृ. 332
11. नानकचंद, पृ. 146
12. वही, पृ. 147
13. विद्यावाचस्पति सोहन लाल शास्त्री, बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर के सम्पर्क में पच्चीस वर्ष, पृ. 336

सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, बाबा बलराज, पंजाब विश्वविद्यालय, अंगीभूत महाविद्यालय, बलाचौर

गीतांजलि श्री की कहानियों में पर्यावरण चेतना

डॉ. राजेश्वरी

पर्यावरण शब्द एवं उसका अर्थ इतना व्यापक है कि वह संपूर्ण सृष्टि को स्वयं में समाहित कर लेता है। सकल ब्रह्मांड एक ही कुटुंब है। पर्यावरण है। पर्यावरण और मनुष्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, यहाँ किसी का अलग अस्तित्व संभव नहीं है। अनादि काल से मानव इस संबंध को समझता और स्वीकार करता आया है। ईशावास्योपनिषद का प्रथम मंत्र ही पर्यावरण को समर्पित है-ईशावास्यामिदं सर्व यत्किंच जगत्यां जगत/तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम।।

गाँधी जी के अनुसार-'प्रकृति के भंडार में हर किसी की ज़रूरतें पूरी करने को यथेष्ट संसाधन हैं, परंतु किसी भी लालच को पूरा करने में यह भंडार असमर्थ है।''[1]

पर्यावरण संरक्षण आज का मुख्य तथा महत्त्वपूर्ण मुद्दा है। आज के समाज को पर्यावरण संतुलन पर जागृति एवं सहभागिता की परम् आवश्यकता है। 'निर्मल वर्मा' ने अपने लेख 'सिगरौली-जहाँ कोई वापसी नहीं' में पर्यावरण सरोकारों को ही नहीं, विकास के नाम पर पर्यावरण-विनाश से उपजी विस्थापन संबंधी मनुष्य की यातना को भी पूरी निष्ठा से रेखांकित किया है-'...पेड़ों पर सूनापन है, न कोई पकता है, न कुछ नीचे झरता है।...अमरौली प्रोजेक्ट के अंतर्गत नवागाँव के अनेक गाँव उजाड़ दिए जाएँगे, तब से न जाने कैसे आम के पेड़ सूखने लगे।...मनुष्य के विस्थापन के विरोध में पेड़ भी एक साथ मिलकर मूक सत्याग्रह कर सकते हैं।...सब एक गंदी, 'आधुनिक' औद्योगिक कॉलोनी की ईंटों के नीचे दब जाएगा।''[2]

एस. आर. हरनोट की कहानी 'आभी' में भी पर्यावरणीय सरोकार को बहुत खूबसूरती से दर्शाया गया है। आभी एक विशेष तरह की चिड़िया है, जो इंसानों द्वारा खड़ी की गई मुसीबत का सामना कर रही हैं। कुल्लू जिले के दुर्गम क्षेत्र में 11,500 फुट की ऊँचाई पर स्थित 'सरेऊलसर' झील को निर्मल रखे हुए है। कोई भी तिनका झील में गिरते ही उसे चोंच से उठाकर दूर फेंक देती है। परंतु प्लास्टिक का कचरा उसके लिए आफ़त बन गया है। प्रकृति, पर्यावरण और पशु-पक्षियों को बचाने के उद्देश्य से 'आभी' चिड़िया के माध्यम से संदेश दिया गया है।''[3]

गीतांजलि श्री ने अपनी कई कहानियों में पर्यावरण के बढ़ते असंतुलन पर चिंता व्यक्त की है। एक साहित्यकार होने के नाते वे विश्व में जहाँ भी जाती हैं, वहाँ की प्रकृति से प्रभावित होकर उसके बारे में लिखती हैं।

'हाशिए पर' कहानी में वे जर्मनी की प्रतिनिधि बनकर फ्रांस को लताड़ती हैं-'फिर उनके पश्चिमी ओर समुद्र है जहाँ से बहकर ताज़ी हवा आती है, दूषित हवा को आगे ठेल देती है।...इन देशों में उठती ज़हरीली हवा का 'डंपिंग ग्राउंड' बन गया है बेचारा जर्मनी। तभी 'हमारी लाइफ़ एंड वेजिटेशन' का यह हश्र हो चला है-''देखो ना हमारे खूबसूरत ब्लैक फ़ॉरेस्ट को जला के रख दिया है आप लोगों की एसिड रेन ने। भुस गए हैं।'' (हाशिए पर, अनुगूँज, पृ. 112) वे भारत की खुली फ़िज़ा को सराहना भी नहीं भूलतीं-प्रकृति जो हवाओं के साथ रोम-रोम में बसने वाली चीज़ है उसके लिए अकृत्रिम साधनों से देखने वाली चीज़ है, इसलिए नकली है, खोखली है....लेकिन अपना देशी झुलसती हवाओं में सोता है, आँगन में बूँदों के प्रहार से जागता है...।...रात की रानी, मधुमालती, चमेली, अनजाने में ही उसके फेंफड़ों को सींचती हैं। कुछ चीज़ें सोचने वाली नहीं होतीं, जीने वाली होती हैं। सोचते ही हम उनका खून नहीं तो खराबा तो कर ही देते हैं।''[4]

'जड़ें' कहानी तो मुख्य रूप से पर्यावरणीय सरोकार को ही लेकर लिखी गई रचना है। लगता है कि नीम के दरख्तों से वे अंतर्मन से जुड़ी हैं, जिनके कटने पर वे भी आहत होती हैं-'नीम के पेड़ हैं। पुराने। बीहड़। जिनकी जड़ें धरती में दूर-दूर तक बिछी हैं।...ये पेड़ काट दें, वरना आसपास की सारी इमारतें ढह जाएँगी...आँकड़े बटोरे युकलिप्टस और सरू की रोपाई पर।...पर इनके लहकते और झूमते पत्ते धरती पर लेट जाते हैं और हवा को पार नहीं जाने देते। यह पृथ्वी का गला घोंटते हैं बिछ के उसकी साँसें मिटाएँगे। त्रास से घिर आता है मन मेरा।...मैं घबरा गई हूँ और यही कैसे भूलूँ कि यह तो नीम के पेड़ हैं। देखो ज़रा, निरे पेंडेंट-से लटके पत्ते। सुनहले कुंदनी। दूब हरे। ताज़ातरीन हवा में मचलते। मालूम भी है यह पेड़ हवा में किस क़दर छितरा देता है ऑक्सीजन? हर तरफ़।...कैसी

न्यारी छाँव है नीम की। सुनते नहीं तो कोयल की कूक? उफ़! किस आसानी से कुल्हाड़ा चला दोगे।...रेगिस्तान बन जाएगा सर। ऊपर की मिट्टी धूल के बादलों में उड़ जाएगी और वही अठारह सेंटीमीटर तो है उपजाऊ। मैंने म्युनिसिपालिटी को संबोधित करके स्थानीय अख़बार में खुली चिट्ठी लिखी-पेड़ों को न काटने की हज़ारों दलीलें दीं।...ये नीम हैं लोगों, चनचनाया स्वर था मेरा। उसके आगे आँख बंद करके हाथ बढ़ा दो, जो वह गिरा दे उसे नेमन समझो। शुद्ध हवा देगा, दवा देगा। इसके बीज से ही तो निकलता है मारगोसा का तेल जो कोढ़ी के लगा दो। पत्ते सूख भी जाएँ तो घर में भटक आने दो, मकोड़े जो भाग जाएँगे और दातून, चाहो तो कर लो दाँतों की परवाह।...ये भी कि हमारे मौत, जो जितनी नामुकिन लगती है उतनी ही निश्चित है, पर पेड़ तो फिर भी रहेंगे। याद नहीं कभी ...प्रकृति की सरंध्रों को बंद करेंगे तो कैसी सड़न फैलेगी? असर किसे छोड़ेगा? जो ताप बढ़ेगा और पानी सूखेगा और प्यास फैलेगी तब क्या ...कितने साँप इंसान के मारे मरे, कितने इंसान साँप ...तड़-तड़ कुल्हाड़े चल रहे हैं, पेड़ कट रहे हैं।...चीख मैं रही हूँ। आजीवन जंगल न काटने पर बोलूँगी, लिखूँगी। रो रही हूँ। सब लौट रहे हैं खड़ी दीवारों का भ्रम सँभाले।''[5]

'आजकल' मैं दंगाग्रस्त शहर में एक हिंदू अपने मुस्लिम दोस्त की बालकनी में उसके इंतज़ार में बैठा उसके आँगन में लगे पेड़ों को देख रहा है। उसके मन में उठती हुई भावनाओं को बहुत सुंदरता से दर्शाया है। 'बुजुर्ग पीढ़ी गई तो बेटा, नए बिजनेस-मस्तिष्कों की तरह, इस फेर में था कि पूरा घर ढहा दे और मल्टीस्टोरी खड़ी कर दे। इन सारे पेड़ों को काट डालता और सड़क तक फ़्लैट भर देता, दमड़ी-दमड़ी मुनाफ़े के लिए। मैंने दोस्त की नज़रों से कंपाउण्ड में लगे पेड़ों को देखा। पेड़ों को बचाने के लिए उसने यह घर खरीदा होगा। साइड पर सेमल का पेड़, बरामदे में चमेली की पुरानी खमदार डाल, सामने कचनार और आम, बारहमासी नींबू और नीम। पुराने पेड़, जिनकी जड़ें यहीं थीं, किस मुनाफ़े के लिए उन्हें समूल उखाड़ें? खुशी भी हुई कि लोगों को बीज से शुरू करना होता है, यहाँ तो सामने साएदार पेड़ पहले से मौजूद हैं। हम समझ रहे हैं हम उन्हें गोद लेंगे, असल तो उन्होंने हमें गोद ले लिया है। ममता हमसे नहीं, उनसे फल-फूल रही है।...न जाने ये पेड़ बचेंगे, मेरे मन में आया और मैं फिर उद्विग्न होने लगा।''[6]

इतना आसमान में अपने व्यंग्यात्मक भाषा में लिखा है कि कैसे न्यूक्लियर वेस्ट के डिस्पोज़ल पर सर्वे करने निकले लोग एक शांत स्थल को डंपिग ग्रांउड बना देना चाहते हैं-...सर्वे पूरा, जगह अनुकूल, सरकार तत्पर, ग्रीन पीस वालों की थोड़ी अड़चनें जो देख ली जाएँगी। दूर तक खुला, दूर तक एकांत, झील गहरी पर दुनिया बेईमान। हज़ारों साल तक दबा रहेगा यहाँ मीटरों नीचे खदानों में न्यूक्लियर बेस्ट, पर कुछ लोगों काम ही आड़े आना। .... पर है हमारी रिपोर्ट रिसर्च तैयार... और उन्होंने टोस्ट प्रोपोज़ किया-टू आवर प्रोजेक्ट 'गामा सेफ़' ।...एक ने कहा वह क्या है/औरत ने कहा झील/ मैंने कहा हमारा नेवल न्यूक्लियर प्रोजेक्ट/चार हज़ार फ़ीट बाद पनडुब्बी की जगह/साठ डीकमिशंड न्यूक्लियर सबमरीन/ केजियम 137/कोबाल्ट 60 स्ट्रोनियम और आयोडीन/वाह वाह वाह!... पायरन बनेंगे, केवल तारों को फैलाने। यहाँ सिविल लॉ नहीं लागू तो ये शोर ग़ैरकानूनी है कि परमाणु लीकेज, हादसा, अफ़सोस, दरार, धन, वनस्पति। ...बत्तियाँ जलेंगी, लाइट हाउस और नाविक संभाल बनाएँगे।...उसके हाथ ने बत्ती का बटन दबा दिया। जिस पर एक अलग किस्म की धातु सफ़ेद रोशनी चारों ओर फैलने लगी और प्लूटोनियम का पीलाहट लिए टीन वाला रंग खाने के स्वाद में आ गया।''[7]

इस सब उदारणों से स्पष्ट है कि वे अपने पर्यावरण के प्रति जागरूक होने के साथ-साथ उसके संतुलन के प्रति चिंतित हैं। उन्होंने इस दिशा में साहित्य सृजन करके उसे जन-जन तक पहुँचाकर पर्यावरण के प्रति अपने दायित्व को निर्वाह करते हुए उसे संतुलित करने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण क़दम उठाया है।

संदर्भ-

1. महाचितिः पर्यावरण, चेतना का भारतीय सांस्कृतिक संदर्भ
2. सिंगरौली, जहाँ कोई वापसी नहीं, गद्यकोश, निर्मल वर्मा, 29.5.2014
3. एस. आर. हरनोट की कहानी, आभी
4. गीतांजलि श्री, हाशिए पर, अनुगूँज, (कहानी-संग्रह), पृ. 108-128
5. वही, जड़ें, वैराग्य (कहानी-संग्रह), पृ. 143-152
6. आजकल, यहाँ हाथी रहते थे, (कहानी-संग्रह), गीतांजलि श्री, पृ. 37-48
7. इतना आसमान, यहाँ हाथी रहते थे, (कहानी-संग्रह), गीतांजलि श्री, पृ. 148-149

C 002- RAMKY UTSAV APRATMENTS, SEENAPPA LYOUT, NEW BEL ROAD, RAV 2ND STAGE, BANGALORE 560094

स्वातंत्र्योत्तर मिथकीय खण्ड काव्यों में आधुनिक भावबोध

डॉ. एन. टी. गामीत

'मिथक' सदा से मानव की आस्था, भावना, विश्वास का वाहक होने से समाज में चेतना का प्रेरक रहा है। अतीत का आधार लेकर मिथक समग्र जीवन को एक नई व्याख्या देता हुआ मानव मात्र को अपने अतीत से जोड़कर आधुनिक भावबोध कराता है। मिथक शाश्वत सत्य को उद्घाटित करते है। रामायण भारतीय जनजीवन-संस्कृति की गाथा है तो महाभारत संपूर्ण भारत की प्राणधारा का व्यंजक महाकाव्य है। ये मिथक भारतीय जनजीवन, संस्कृति को प्रभावित करने वाले और समसामयिक प्रश्नों से जूझने, टक्कर लेने और समाधान खोजने हेतु कवियों ने इन्हें कलात्मक रूप दिया है।

मिथकीय खण्ड काव्यों में आधुनिक संवेदना और भाव-बोध के विविध आयाम जुड़े हुए है। मिथकीय पात्र समकालीन जीवन और आधुनिकता को अभिव्यक्ति देने में सार्थक सिद्ध हुए है। क्योंकि प्रत्येक देश एवं काल में आधुनिकता रही है, यह शाश्वत क्रम है। पौराणिक संदर्भों के आधार पर लिखे गए काव्य होते हुए नई परिस्थितियों के संदर्भ में भावबोध कराने में सफ़ल रहे हैं। भावबोध के कारण युगीन की पहचान उभरकर सामने आयी है।

मिथकीय खण्ड काव्यों में आधुनिक भावबोध

आधुनिक युग में व्यक्ति संकीर्णताओं से घिरा है। स्वयं की रक्षा हेतु अपनों की भी उपेक्षा करने लगे हैं। उसी प्रकार 'एक कंठ विषपायी' में दक्ष को लगता है कि सती का अपहरण कर शिव ने उनकी मर्यादा को तोड़ा है। इसी दर्प से वे शंकर के अस्तित्व को नकार देते हैं और अपनी प्रतिष्ठा खण्डित होते देख शंकर से कूटनीति द्वारा प्रतिशोध लेने की ठान लेते है-''उनकी आत्म प्रतिष्ठा का भ्रम तोड़ूँगा मैं।...हर अवसर /हर आयोजन पर। अपनी अवहेलना देखकर शंकर का देवत्व स्वयं ही झुलस उठेगा।''[1]

आज का आत्मकेंद्रित मनुष्य अपनों की ही उपेक्षा कर बैठता है। फलतः वह स्वयं के विनाश का कारण भी बनता है। जैसे दक्ष सती के आत्मदाह के कारण बने और उनकी पत्नी का मातृ हृदय यज्ञ में पुत्री एवं जमाता आमंत्रित न करने तथा पुत्री के दग्ध होने पर व्याकुल हो जाता है।

राजकुमार सुलभ द्वारा बंदी निर्दोष चिड़िया के चीत्कार से भृत्य ही नहीं वातावरण भी त्रस्त हो जाता है। वीरिणी पक्षी को मुक्त करती है तब राजकुमार अपना अपमान अनुभव करता है। तब मोहजन्य दुर्बलता वश शासक दक्ष पुत्र का दोष न देख भृत्यों को कहता है- 'एक तनिक से बालक को प्रसन्न रखने में अक्षम तुम सब दंडनीय हो। आज के शासकों की रूग्ण मानसिकता व्यक्त हुई है।'

आधुनिक संवेदना का सशक्त प्रवक्ता सर्वहत है। उसके अनुसार आज का शासक वर्ग सिर्फ चुनाव के समय ही आश्वस्त करता है फिर व्यस्तताओं के बहाने प्रजा के प्रश्न टालते रहते है और न्याय के बजाय प्रजा का ध्यान बाँटने के लिए युद्ध जैसा कोई नाटक रच लेते हैं। उनको प्रजाहित की चिंता नहीं होती इसलिए कुछ ही अघटित करने में हिचकते नहीं। कवि ने आधुनिक वैयक्ति, सामाजिक, शासकीय व्यवस्था में स्थित क्षत्रियों का भावबोध के धरातल पर संवेद्य बनाया है।

'आत्मजयी' काव्य में नचिकेता ज़िंदगी से निराश, हताश हो जाता है, पर सार्थक जीवन जीना चाहता है। मृत्यु अनिवार्य सत्य है किंतु उसमें से नये जीवन का प्रारम्भ कैसे किया जाए, यही इस काव्य की मूल संवेदना है। नचिकेता आधुनिक पीढ़ी का है जो परंपराओं का विरोधी है। उसके पिता वाजश्रवा पुरानी पीढ़ी के द्योतक है। आज प्रत्येक क्षेत्र में प्राचीनता और नवीनता में सीधी टकराहट देखने को मिलती है। नये मूल्यों की स्थापना न होने से मनुष्य अंदर ही अंदर टूट रहा है। वह एकांकी जीवन जीने के लिए विवश है। नचिकेता कहता है ''मैं जिन परिस्थितियों में ज़िंदा हूँ। उन्हें समझना चाहता हूँ-वे उतनी ही नहीं। जितनी संसार और स्वर्ग की कल्पना से बनती है।''[2]

आज के मनुष्य की यही विडंबना है कि वह स्वयं को अस्थिर मानकर सशंकित होकर प्रश्नों से जूझता है। जीवन क्या है? मृत्यु क्यों? मुक्ति कैसे? ईश्वर कहा? आज मनुष्य के पास अतुल राशि होते हुए भी मूल्यहीनता के कारण नचिकेता को जीवन बासी एवं तरसाया-सा लगता है। आज मनुष्य निराशा एवं संत्रास भरे जीवन में भी अस्मिता को नहीं छोड़ता।

आज का मानव आपा-धापी और दबावों में जीता है। मानव-स्वभावतः भौतिक भूख के कारण जितना पाये कमी ही लगता है। परिणामतः भौतिक प्रगति का हर चरण घातक सिद्ध हो रहा है और मनुष्य को हाथ में आता है सिर्फ जीवन का एक हताश बिंदु।

'भस्मांकुर' काव्य में विविध भावों की मार्मिक व्यंजना वर्णित है, रति, हर्ष, करूणा, उग्रता, जड़ता, चिंता, गर्व, मोह, उन्माद, व्याधि और वितर्क आदि मनोभाव आज के मानव की आधुनिक संवेदना और भावों को व्यंजित करते हुए काव्य को जीवंत बना देते है। आज मानव विषाद एवं शंका से ग्रसित है, उसकी व्यथित रति-व्यथा दृष्टव्य है-''स्वेदसिकत, रोमांचित, कांतिविहिन। अंग-अंग लगता था स्पंदन शून्य।/होठों पर से गायब थी मुस्कान। फीकी आभा में उदास थे गाल।''[3]

'भस्मांकुर' शीर्षक अपने आप में मनोवैज्ञानिक है। जो भस्म हो चुका है, वह पुनः वहीं से अंकुरित होगा अर्थात् जिसका सर्वनाश संभव नहीं है और वही सार्थक है। पार्वती शिव को किसी साधना से नहीं किंतु आत्मिक सौंदर्य के बल पर आकर्षित करती है। कार्य सिद्धि कामवासना के द्वारा नहीं आस्था एवं निष्ठा युक्त साधना तप से की जा सकती है, तभी शिवतत्त्व की रक्षा होती है। मानव का मनोमंथन, युगीन मानव की पहचान देने का प्रयत्न मनोवैज्ञानिक धरातल पर सूक्ष्म चित्रण किया है।

'संशय की एक रात' में राम आधुनिक मानव के प्रतिनिधि बनकर युगीन संशय, वैषम्य और विसंगतियों को हमारे सामने रखते है। 'क्या करे क्या न करे' के द्वन्द्व से ग्रसित मनःस्थिति में आज का मनुष्य कोई निर्णय नहीं कर पाता और स्वयं को खण्डित एवं लघु मानने लगा है। यही आज के व्यक्ति की पीड़न घुटन है। अनिश्चय, भटकाव, संशय और विवशता की स्थिति में वह दुहरा जीवन जीते हुए, द्विधाग्रस्त हो गया है-''दो सत्य। दो संकल्प। दो-दो आस्थाएँ। व्यक्ति में ही अप्रमाणित व्यक्ति पैदा हो रहा है।''[4]

प्रस्तुत काव्य में कवि ने समस्त युगीन स्थितियों को राम के संशयात्मक व्यक्तित्व में दिखलाया है। आज के मानव का मूल्यांवेषी व्यक्तित्व विवेक सार्वजनिक निर्णय में विवेक भूमि पर पूर्ण सम्मत न होने से छटपटाहट का अहसास कर रहा है। न चाहने पर भी बहुमत के निर्णय के सम्मुख उसे झुकना पड़ता है। वर्तमान विधानसभा और लोकसभा में भी यह स्थिति चल रही है। क्योंकि जहाँ समूह की बलसिद्धता मान्य हो तब भला व्यक्ति सत्य की रक्षा कैसे हो सकती है। युद्ध मानव मूल्य की रक्षा का अंतिम सत्य इस रूप में नहीं हो सकता। राम की आत्मचेतना उस व्यथा के बोझ को झेल रही है कि सीता की रक्षा समूह रक्षा माना जाय या नहीं। आधुनिक संवेदना के रूप में यह भावबोध बहुत ही सटीक है।

विभीषण रावण के मानव विरोधी व्यवहार के कारण द्वन्द्वग्रस्त है। उसे लगता है उस पर लांछन लगेगा कि राष्ट्र के संकट समय उन्होंने राज्य प्राप्ति के लिए आक्रमण का साथ दिया था। अर्थात् सत्य का साथ दे या राष्ट्र का। इस आधुनिक संवेदना को हम किनारे नहीं कर सकते। कवि ने व्यक्ति भावनाओं को समाज को सौंप दिया है, जो आज के जीवन की वास्तविकता है। कवि के अनुसार युद्ध श्रेयस्कर नहीं है। किंतु सामाजिक मर्यादा के प्रश्न के कारण युद्ध कभी-कभी अनिवार्य हो जाता है।

'प्रवाद पर्व' में कवि ने युगीन परिवेश की दृष्टि से सामयिक तनावों, दबावों, विसंगतियों और कुरूपताओं को राम के द्वारा उभारा है। उद्धिग्न राम सोचते हैं, क्या निर्मम असंग कर्म ही मनुष्य की नियति है? 'कर्म' के इस भागवत अनुष्ठान से कोई मुक्त नहीं है। एक साधारण धोबी ने शासक की पत्नी के चरित्र पर अंगुली उठाई तो लक्ष्मण इसे दुःसाहस और भरत धोबी की अनाधिकार चेष्ठा राजद्रोह मानते हैं। जबकि राम राजकर्त्ता को समाज एवं प्रजा से परे न मानकर न्याय की दृष्टि से समान मानते है। यहाँ राम के प्रति लक्ष्मण भरत की भाव संवेदना है जो आधुनिक संवेदना के उस धरातल को व्यक्त करती है, जहाँ शासक की इच्छाओं पर न्याय दण्ड में परिवर्तन कर दिया जाता है। जिससे शासक न्याय के नहीं भय के प्रतीक बनते जा रहे हैं। इसलिए राम भरत से कहते है-''राज्य को सामूहिक आकांक्षा का प्रतीक बनने दो भरत।''[5] यहाँ आज की शासकीय संवेदना भावबोध के स्तर पर दृष्टिगत होती है।

धोबी की बात से राम सीता का दाम्पत्य जीवन भयग्रस्त स्थिति में आ गया है। तब राम कहते है-''एक घटना/एक व्यक्ति/फिर में तुफानों के उबलते/उफनतेपन में फेंक जाता है।''[6] राम सीता को पाने के बजाय खोते जा रहे हैं। इसमें संवेदना का आधुनिक भावबोध व्यक्ति के स्तर पर व्यक्त है। जबकि राम शासक के रूप में धोबी की उठाई अंगुली को प्रजा का मूलभूत अधिकार मानकर उसे राजद्रोह नहीं मानते। आज के शासकों के लिए यह बात ग्रहणीय हो सके तो समाज का कल्याण संभव हो सकता है। राम मानते है कि राज्य किसी की वैयक्तिकता नहीं किंतु संपूर्ण की समग्रता में है।

'शंबूक' काव्य में आधुनिक समाज की विषमताओं, वर्ग संघर्ष से ग्रसित समाज की छवि उद्‌घाटित की है। शंबूक कहता है- ''जो व्यवस्था/वर्ग-सीमित स्वार्थ से/हो ग्रस्त/वह विषम/घातक व्यवस्था/शीघ्र ही हो/अस्त''[7] हर युग अनेक शंबूक शिकार बताए जाते है। वह युगों से शोषित, दलित, पीड़ित वर्ग का

प्रतिनिधि है, शंबूक का विद्रोह मानव मूल्यों के प्रति गहरी आस्था से निष्पन्न हुआ है। शंबूक की प्रखरता राम की गौरवमयी राजसी चेतना को बेध डालती है।

शासक का शासन न्यायपूर्ण नहीं होता तो प्रजा का शोषक होता है। वन्य लोगों का निरक्षर होना, यातनापूर्ण जीवन, वनपाल अधिकारियों का शिकार होना आदि में आधुनिक जीवन की त्रासदी प्रासंगिक ही है। वन देवता का कथन है-''क्यों सनातन इन्हें/आते है तुम्हारे भृत्य/क्यों न करते तुम/इन्हें सद्भाव से कृतकृत्य।''[8] अर्थात् वनवासी प्रजा को आज भी जीने की प्राथमिक सुविधाएँ प्राप्त नहीं है। इसलिए शंबूक प्रतिक्रियावादी होना सिर्फ राम के प्रति नहीं बल्कि समस्त बुद्धिजीवी उच्चवर्ग के प्रति है। आज भी शूद्र लोगों के अधिकार कुचले जाते है यह कैसा न्याय? कैसी संस्कृति है? शंबूक द्वारा कहलवाया है। वर्ण निर्धारण जन्म से नहीं व्यवसायानुसार होगा। जिससे सुख-साधनों पर वर्ग विशेष का अधिकार नहीं मानव मात्र का होगा। अभावग्रस्त आदिवासियों का मार्मिक चित्र अंकित किया है। उनके जीवन में सदा आग धधकती रहती है अभाव की जो उन्हें जलाती और जीवित रखती है।

'शबरी' खण्ड काव्य में आत्मिक संघर्ष, निम्नवर्ग होने पर चैतन्य की रक्षा कितनी दुष्कर है, क्योंकि सामूहिक जड़ता दूर करना कठिन है। इस काव्य की भाव संवेदना आज के जीवन में व्याप्त विषमता और शोषण के भाव को स्पष्ट करती है। शिक्षा एवं संस्कार के अभाव में किसी बात का विवेक नहीं रहता और जीवन में हिंसा, लूट, हत्याएँ प्रमुख बन गयी।

इसलिए शबरी कहती है-''कहीं मनुजता नाम नहीं यह कैसा जीवन काला? विचार एवं भाव से अभिभूत होकर पति, परिवार के मोहमाया को व्यज कर आत्मचेतना के सौंदर्य की खोज में ऋषि आश्रम में शरण लेती है। क्योंकि शबर समाज में अपने आपको अकेला पाकर जीवन की त्रासदी को भोग रही थी-''काँटे, हड्डी फैले रहते। रक्त-लकीरें भू पर/जीवित नरक सरीखे घर में/उनका जीवन दूभर''[9] उसके अंतर में संघर्ष है जो आज के मनुष्य के लिए आवश्यक है-क्या बीत जाएगा यह सारा जीवन इसी नरक में? आज के मनुष्य के लिए भी प्रश्नार्थ है कि जहाँ सर्वत्र वितृष्णा ही वितृष्णा दिखाई दे रही है। आंतरिक सौंदर्य प्राप्त करने की आज मनुष्य के लिए सख्त ज़रूरत है। वहीं शबरी काव्य का संदेश है।

'कनुप्रिया' काव्य में नारी भावना, जनजीवन में व्याप्त, संत्रास, भय, संशय, अनास्था, अस्तित्वबोध आदि का मार्मिक चित्रण किया है। आज के मानव जीवन में स्वार्थ लिप्सा के कारण बिखराव आ गया है और संबंधों में परिवर्तन। 'कनुप्रिया' राधा-कृष्ण की सहज प्रेम-संवेदना के माध्यम से आधुनिक संबंधों के बिखरावपरक जीवन में जीने का भावपरक प्रयास है। ऐसे वातावरण में इतिहास के क्षण सार्थक है या तन्मयता के क्षण? यह संशयात्मक प्रश्न हरेक मनुष्य को झकझोरता है। कवि ने राधा के माध्यम से इसी समस्या को उभारा है-''अर्जुन की तरह कभी। मुझे भी समझा दो/सार्थकता है क्या बंधु?/मान लो कि मेरी तन्मयता के गहरे क्षण/रंगे हुए, अर्थहीन, आकर्षक शब्द थे/तो सार्थक फिर क्या है कनु?'' यहाँ राधा की पूर्वराग जन्य मनःस्थितियों का भावुक एवं सूक्ष्म वर्णन है। कवि ने नर-नारी की प्रणयानुभूति एवं चिरंतन सहयात्रा के सुखात्मक, दुःखात्मक संवेदन और पूर्वरागजन्य मनःस्थितियों के साथ आधुनिक जीवन के बिखराव को भी वाणी दी है।

'योग-निंद्रा' काव्य को क्षणों के अंतराल में कही गई कथा है। बाण से बिद्ध श्रीकृष्ण योग-निंद्रा के क्षणों में ऐसी भाव संवेदना में आ जाते है, जिसमें आज के जीवन का दर्द, नयी संवेदना दी है, जो राधा, गांधारी और कुन्ती के प्रवेश से अधिक संवेद्य हो जाती है। गांधारी नारी द्वन्द्व की नियति जिसे पति का नपुंसकत्व मिला। प्रेम की भूखी उसे राजशक्ति की प्रवंचना ही मिली। यहाँ कवि के आज के युग में भी अनमेल विवाह से पीड़ित नारी की व्यथा व्यक्त की है। कुन्ती का कथन में श्रीकृष्ण ने माता यशोदा की ममता को भुला दिया था। इस तथ्य को कुन्ती श्रीकृष्ण के सामने रखती है ''बहू माता ही होती है। देती तो स्नेह-सुधा/पिलाती जो पय अपना/पालती है शिशु को निज पलकों की छाया में।''[10]

इस काव्य में विविध स्तरों पर आधुनिक संवेदना प्रस्तुत है। कृष्ण को साधारण जन की स्थिति में रखकर उसमें आधुनिक मानव की विषमताएँ, विसंगतियाँ मानसिक धरातल पर उभरकर सामने आयी है।

'एक पुरुष और' काव्य की कथा पौराणिक है, किंतु संवेदना और भावबोध आधुनिक है। मेनका की पीड़ा आज के पुरुष प्रधान शोषण युक्त समाज की है। जो आधुनिक है जीवन की सार्थकता हेतु विद्रोह करती है। नारी को संपूर्ण सार्थकता प्राप्त करने के अवसर देना चाहिए। जिससे मानव-मानवीय गरिमा का गौरव प्राप्त कर सके। विश्वामित्र और मेनका पुरुष और स्त्री के रूप में षड्यंत्रों के कारण निकट आते है।

दूसरी तरफ इंद्र को किसी देश का भयभीत सत्तालोलुप शासक के रूप में आपातकाल के पूर्व सत्ताधारी राजनीतिज्ञों की अनुरक्षा जनित व्याकुलता को प्रतिबिंबित किया है। जो आज के राजनीतिज्ञों की सच्चाई है। आज व्यक्ति अपने अस्तित्व की रक्षा नये मूल्यों की स्थापना करता है। निष्ठा का रूप आज बदल गया है। आदर्श और परंपराएँ उत्तेजना की सीमा में संबंधों के साथ धूमिल हो जाती है।

'महाप्रस्थान' काव्य की मूल संवेदना राज्यव्यवस्था जन्य विसंगतियों से मानवमुक्ति की कामना है। आज समाज में से सारे मानव-मूल्य ध्वस्त हो रहे है तथा राज्य निरंकुश तंत्र से ग्रसित हो रहे है। जिसके तह में मानवीय गरिमा नष्ट होती जा रही है। युधिष्ठिर कहते है-''आज नहीं तो कल/राजा से अधिक कठोर हो जाएँगे/ये राज्य/और सुदूर भविष्य में/राज्य से भी अधिक मानवीय हो जाएँगी/ये राज्य व्यवस्थाएँ।''[10]

इस सत्य का दर्शन आज हम अपने युग की राज्यव्यवस्था में भी कर रहे है। आज व्यक्ति की व्यक्तित्व मर्यादा राज्य और राज्य व्यवस्था के नीचे दब कर रह गयी है। व्यक्ति की सुविधा के लिए व्यवस्था तंत्र है। जबकि आज विपरीत परिस्थिति होने के कारण व्यक्ति विवश बनकर रह गया है। युद्ध से मानवीय संस्कृति मर्यादाएँ समाप्त हो जाती है। युधिष्ठिर युद्ध के मूल में राज्यव्यवस्था के षड्यंत्रों को मानते है, जिनमें द्रोणाचार्य, विदुर जैसे ज्ञान संपन्न व्यक्तियों ने भी आहुति दी है।

'सूर्यपुत्र' में आधुनिक मानव मन जिन दुश्चिंताओं, यंत्रणाओं और पीड़ाओं को भोग रहा है उन्हीं को कर्ण और कुंती ने भी झेला था। कवि ने पुरातन पात्रों के माध्यम से नवीन भावबोध प्रस्तुत किया है। मानवीय संवेदना, भोगी गई कटुता, धुंधलाते हुए अस्तित्व को अभिव्यक्ति दी है। कौमार्यावस्था में माँ बनने से नारी को कितनी विडंबनाओं, मर्यादाएँ तथा अंतःसंघर्ष से जूझना पड़ता है। कवि ने उपयुक्त ही कहा है-''कई पात्रों की व्यंजना इतनी मार्मिक है कि वे द्वापर के होकर भी अब के मानव मन की अविराम संघर्ष गाथा के प्रतीक बन गए है।''[12]

निष्कर्षतः कह सकते है कि आधुनिक संवेदना और भावबोध मिथकीय खण्ड काव्यों में प्राणरूप से विद्यमान है। आलोच्य काव्यों में वैयक्तिक, सामाजिक एवं शासकीय व्यवस्था की क्षतियों, जीवन मूल्यों का चिंतन, संशयात्मक व्यक्तित्व, सामूहिक जड़ता में चैतन्य रक्षा तथा आत्म संघर्ष, मनुष्य जीवन की त्रासदी, संबंधों में बिखराव, नर-नारी की प्रणयानुभूति, आज के मानव जीवन का दर्द, नारी द्वन्द्व में नारी चेतना, मानवीय गरिमा, राज्य व्यवस्था की विसंगतियों आदि का आधुनिक संवेदना एवं भावबोध की दृष्टि से सफल अंकन किया गया है। ये सारे काव्य भारतीय जीवन संस्कृति को प्रभावित करने वाले सशक्त माध्यम रहे है। मिथकीय चरित्र होते हुए भी आधुनिक संदर्भों में विशिष्ट मनःस्थिति के साथ व्यवस्था तंत्र के प्रतीक एवं मानवीय संवेदनाओं, समस्याओं तथा वैश्विक परिवेश में भी पूर्णतः प्रासंगिक लगते है।

संदर्भ-

1. दुष्यन्त कुमार, एक कंठ विषपायी, पृ. 15
2. कुंवरनारायण, आत्मजयी, पृ. 99
3. नागार्जुन, भस्मांकुर, पृ. 15
4. नरेश मेहता, संशय की एक रात, पृ. 31
5. नरेश मेहता, प्रवाद पर्व, पृ. 12
6. वही, पृ. 30
7. जगदीश गुप्त, शंबूक, पृ. 45
8. वही, पृ. 59
9. नरेश मेहता, शबरी, पृ. 6
10. कृष्ण नंदन, पीयूष, योग निंद्रा, पृ. 28
11. नरेश मेहता, महाप्रस्थान, पृ. 106
12. जगदीश चतुर्वेदी, सूर्यपुत्र, प्राक्कथन से

एसो. प्रो., हिंदी भवन, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट

वाङ्मय बुक्स, अलीगढ़ 09044918670

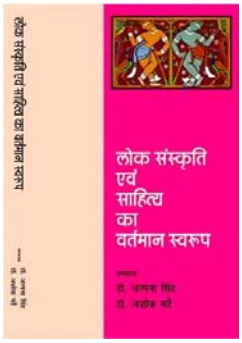

प्रयोजनमूलक हिंदी की अवधारणा एवं विकास

सुजाता जन्नू

हिंदी भाषा तथा उसके विविध रूपों के अंतर्गत-प्रयोजनमूलक हिंदी का अपना ही एक अस्तित्व बनने तथा संवरने को है। भाषा के मनुष्य अपने विचारों को एक दूसरे के पास पहुँचाता ही नहीं अपितु चिंतन की प्रक्रिया को पूरा करता है। मतलब यह कि-जिन ध्वनि चिह्नों के द्वारा मनुष्य विचार व्यापार करता है उनकी समष्टि को भाषा की संज्ञा दी जाती है। प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक ''स्वीट ने भाषा के संबंध में कहा है- ''ध्वंयात्मक शब्दों द्वारा विचारों को प्रकट करना ही भाषा है''[1] सामान्यतः भाषा की विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

1. भाषा एक योजनाबद्ध तरीक़े से प्रयुक्त की जाने वाली संघात्मक व्यवस्था है।
2. वह प्रतीकात्मक रूप में प्रयुक्त होती है।
3. मानवीय व्यवहार का महत्त्वपूर्ण माध्यम है।
4. भाषा का प्रयोग एक ख़ास मानव समाज में होता है। उसी में वह समझी और बोली जाती है।

हिंदी आज हमारे देश की संपर्क भाषा है, राष्ट्रभाषा है एवं राजभाषा। जहाँ तक उसके संपर्क भाषा और राष्ट्रभाषा की बात है, वह सर्वस्वीकृत है। केवल राजभाषा को लेकर कुछ समस्याएँ हैं। उसका कारण है कि देश का शासन चलाने वाला अधिकारी वर्ग अभी तक हिंदी में काम करने में पूर्ण सक्षम् नहीं हो पाया है। जिस दिन वह सक्षम् हो जायेगा, अपने आप यह समस्या हल हो जाएगी और हमारा पूरा देश सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक एवं प्रशासकीय स्तर पर एकता के सूत्र में बंधकर हिंदी के माध्यम से एक राष्ट्र के रूप में अपनी सशक्त पहचान स्थापित करेगा।

हिंदी भाषा के विकास की बातें चित्र विकसित करने वाली हैं। हम लोगों को ऐसे मार्ग पर बाध्य होकर चलना पड़ा जहाँ मन रमकर भी नहीं रमता। हिंदी साहित्य को लेकर अब तक पठन-पाठन बहुत कुछ हुआ। निःसंदेह हमारी भाषा हमारा साहित्य प्रपंच के साहित्य में बेजोड़ है। वैसे तो साहित्य जीवन को परिष्कृत करता है। उसका उद्देश्य लोकहित है। किंतु आज के इस वैज्ञानिक युग में जब स्पर्धा अपनी चरम सीमा पर है, व्यक्ति के साथ रोजी-रोटी की समस्या जुड़ी हुई प्रतीत हो रही है। इस कारण-प्रयोजनमूलक हिंदी के स्वरूप को साहित्य से अलग करके देखा भी जाय तो हिंदी साहित्य का क्षेत्र और प्रयोजनमूलक का क्षेत्र एक ही है या भिन्न साहित्य की भाषा और दैनिक व्यवहार की भाषा में काफी अंतर है। हिंदी की शब्दावली और प्रयोजनमूलक की शब्दावली भिन्न होने लगती है। प्रयोजन मूलक हिंदी के लिए भाषा के बहुत ही स्पष्ट एवं बोधगम्य शब्दों के प्रयोग की आवश्यकता पड़ती है। दोनों का प्रयोग क्षेत्र भी अलग है। इसलिए एक जैसी शब्दावली स्वीकार नहीं हो सकती। तथ्यपूर्ण सिल-सिलेदार वर्णन करने वाली भाषा-प्रयोजनमूलक होगी; और साहित्य की भाषा में तथ्यगत वस्तु के साथ काल्पनिकता का मिश्रण रहता है।''[2] प्रयोजन मूलक हिंदी भाषा विज्ञान के अंतर्गत विकसित होने वाली आधुनिक एवं बहुआयामी तथा अत्यंत उपयोगी शाखा है। प्रयोजनमूलक विशेषण हिंदी की उपयोगिता को स्पष्ट करता है।

विभिन्न-ज्ञान-विज्ञान क्षेत्र, सरकारी विभाग, प्रशासन एवं शिक्षण संस्थाओं तथा संचार, विधि, खेल-कूद एवं संवाद स्थापित करने के लिए प्रयोजन मूलक हिंदी की आवश्यकता महसूस की गयी। प्रयोजनमूलक व्यावहारिक या सामान्य शब्द नहीं किंतु एक पारिभाषिक शब्द है। जिसका स्पष्ट परिभाषित अर्थ है-जैसे- 'एक ऐसी विशिष्ट भाषिक संरचना से युक्त हिंदी जिसका प्रयोग किसी विशेष प्रयोजन के लिए ही किया गया हो।''[3] प्रयोजनमूलक हिंदी संकल्पना के अंतर्गत फंक्शनल पर्याय के रूप में प्रयोग किया गया। कोशगत अर्थ है-कार्यात्मक क्रियाशील अथवा वृत्तिमूलक प्रयोजनमूलक हिंदी में प्रयोजन विशेषण है तथा मूलक उपसर्ग।

प्रयोजन का बोध भाषा में प्रयोजनीयता से होता है। जबकि मूलक से तात्पर्य है-आधारित। अर्थात् प्रयोजन मूलक भाषा से तात्पर्य हुआ किसी विशेष उद्देश्य के अनुसार प्रयुक्त भाषा/भाषा के बहुतेरे विद्वानों भाषा को व्यक्तिपरक माना है और उसका संबंध भाव पक्ष या कला पक्ष के साथ जोड़ा है। भाषा के दूसरे वर्ग के अंतर्गत-भाषा को समाजपरक माना है। उसका संबंध मानव जीवन की ज़रूरतों, सामाजिक आवश्यकताओं

से जोड़ा हैं अर्थात् उसे रोजी-रोटी कारोबार की भाषा माना है। 'श्री मोटूरि सत्य नारायण के मतानुसार जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपयोग में लाई जाने वाली हिंदी ही प्रयोजनमूलक हिंदी है।''[4] यानी प्रयोजनमूलक भाषा व्यक्तिपरक होकर भी समाज सापेक्ष है।

प्रयोजनमूलक (व्यावसायिक) हिंदी की अवधारणा

भारत में 20वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रांति हुई-इस संदर्भ से औद्योगिक व्यवसाय का विस्तार शुरू हुआ। कल-कारखाने स्थापित होने लगे। उद्योग-व्यवसायों के साहित्य बनने लगे। उत्पादों के विवरण सूची, संघटन तत्त्व, लाभ, उपयोगितापरक बुलेटिन, ब्रोचर आदि के साथ सभी क्षेत्रों में शोध और प्रयोग का जाल बिछने लगा। इस कारण अब यह स्वाभाविक था कि-हिंदी भाषा में इन उद्योग, व्यवसायों से संबंधित विविध कार्यालयों के निष्पादन के क्रम में इन्हें अर्थ देने वाले नए-नए शब्दों का विकास होना शुरू हुआ। पुराने शब्दों को भी नए अर्थ दिये जाने लगे। फलस्वरूप प्रयोजनमूलक हिंदी अथवा व्यावसायिक हिंदी की परिकल्पना को आधार मिला जिससे विभिन्न व्यवसायपरक शब्दावलियों का निर्माण और विकास की प्रक्रिया शुरू हुई। जैसे-प्रशासनिक, न्यायिक, व्यवसायिक, शिक्षण, प्रशिक्षण, विज्ञान शोध और तकनीक से संबंधित विविध और व्यापक शब्दावलियों के मानकीकरण किए गये और नई भाषा प्रयोजनमूलक हिंदी का प्रादुर्भाव हुआ।

भाषा का प्रयोग समाज से होता है किंतु समाज के संदर्भ हमेशा एक नहीं होते। मानसिक प्रायोजनिक पारंपरिक तथा अभिव्यक्ति दृष्टि से समाज के भी परिवर्तन होते हैं। उदाहरणस्वरूप-बैंक का समाज, प्रशासनिक कार्यालय का समाज, वैज्ञानिक प्रयोगशाला का समाज, सब्जी मण्डी समाज आदि आते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि एक बड़े समाज के भीतर विभिन्न प्रयोजनों से जितने भी विभिन्न छोटे-छोटे समाज गठित होते हैं, उन सबकी अपनी भाषा भी एक सीमा तक अलग-अलग होती है।''[5] डॉ. विनोद गोदरे का मानना है कि-''जीविकापार्जन, अभ्यास और ज्ञान के द्वारा विशेष शब्दावली में विशेष अभिव्यक्त इकाइयों एवं संप्रेषण कौशल से समाज सापेक्ष-प्रयोजनों की पूर्ति के लिए प्रयुक्त की जाने वाली विशेष भाषा प्रयुक्तियों को प्रयोजनमूलक हिंदी कहा जा सकता है।''[6] वस्तुतः प्रयोजनमूलक के सात रूप माने जाते हैं।

1. बोलचालीय हिंदी
2. व्यापारी हिंदी जिसके अंतर्गत-मंडियों की भाषा, सर्राफे के दलालों की भाषा, सट्टा बाज़ार की भाषा
3. कार्यालय हिंदी
4. शास्त्रीय हिंदी
5. तकनीकी हिंदी
6. समाजी हिंदी
7. साहित्यिक हिंदी

हाँ, किंतु प्रयोग के स्तर पर विषय विशेष अथवा व्यवहार क्षेत्र विशेष में प्रयोग आने वाली भाषा रूपों को प्रयुक्ति कहा जाता है। उदाहरण के लिए कार्यालयी हिंदी में प्रयोग होने वाली प्रयुक्तियाँ-परिपत्र जारी करे, प्रस्तुत करे, कारण तलब किया जाए, अनुमोदन हेतु, देख लिया, चर्चा करें आदि।

सूचनार्थक एवं प्रचारात्मक हिंदी में प्रयोग होने वाली प्रयुक्तियाँ यथा-सनसनीखेज समाचार, तबादलों पर केंद्र की मुहर, हम दो हमारे दो, पिटी हुई फ़िल्म, ऊँची एडी का कमाल फलेरितात्पादल आदि।

औद्योगिक एवं वाणिज्यिक हिंदी में प्रयोग होने वाली प्रयुक्तियाँ-भारी छूट, दाग ढूँढ़ते रह जाओगे, मैल को उखाड़ फेंके। मैल का दुश्मन, मूल्य सूचकांक चढ़ा, माँग बढ़ी आदि।

शास्त्रीय हिंदी में अपनी प्रयुक्तियाँ बनाई गई। जिसमें राजनैतिक सरगर्मी, सामाजिक चेतना, अर्थ व्यवस्था दावपेंच, आर्थिक ढाँचा, अध्यादेश जारी, राजनीतिक हथकंडे आदि।

वैज्ञानिक हिंदी के अंतर्गत प्रयुक्त प्रयुक्तियों इस प्रकार हैं- ऊँची रणनीति, भूमिगत विस्फोट, तूफान का अंदेशा, शून्य से नीचे-तापमान, तगड़ीजान।

तकनीकी हिंदी में प्रयुक्तियाँ देखिए- मदान प्रचालन प्रगति पद हीरा संसाधन, तेज़धार, गर्म लोहा आदि।

संदर्भ-

1. विभूति मिश्र, राष्ट्रभाषा संदेश, पृ. 5, सितम्बर-1997
2. प्रयोजनमूलक हिंदी, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा-भूमिका
3. डॉ. दंगल झाल्टे, प्रयोजनमूलक हिंदी सिद्धांत और प्रयोग, पृ. 40
4. प्रयोजनमूलक हिंदी, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा-भूमिका, पृ. 77
5. गोवर्धन ठाकुर, प्रयोजनमूलक हिंदी और राजभाषा पत्रकारिता, पृ. 9
6. डॉ. विनोद गोदरे, प्रयोजनमूलक हिंदी, पृ. 16

शोधार्थी-हिन्दी विभाग, कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड

राष्ट्रभाषा हिन्दी का न्यायिक स्वरूप

डॉ. विनीता शुक्ला

अंग्रेजों की दासता से निकलकर परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ी भारत माता और भारत वर्ष को स्वतंत्र कराने की भावना तब से बलवती हुई, जब से भारत में स्वतन्त्रता आन्दोलन आरम्भ हुआ। तभी से भारतीयों के मन में राष्ट्र भावना जाग्रत होने लगी। भारतीयों के अथक् प्रयासों के फलस्वरूप भारत ने 15 अगस्त, सन् 1947 को परतन्त्रता की शृंखला उतारकर फेंक दी और स्वतन्त्रता का गौरव प्राप्त किया। तीन वर्षों में स्वतन्त्र भारत का संविधान बन सका। 26 जनवरी सन् 1950 को भारत ने स्वयं को 'गणतन्त्र' घोषित किया। इसी शुभ दिन भारत का अपना संविधान लागू हुआ। इस संविधान के अनुसार हिन्दी को भारत की 'राष्ट्रभाषा' और देवनागरी को भारत की 'राष्ट्रलिपि' घोषित किया गया। इस विषय पर बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' द्वारा रचित लेख के कुछ अंश इस प्रकार हैं - ''इससे पूर्व कि हम केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय की शब्दावलियों के उदाहरण उपस्थित करें, यहाँ इतना निवेदन और कर देना चाहते हैं कि संविधान के अनुच्छेदों के यान्त्रिक अनुच्छेदों से ही काम नहीं चलेगा। भारतीय संविधान ने 343 वें अनुच्छेदों में अपनी भाषा विषयक नीति की स्पष्ट घोषणा की है। यह अनुच्छेद एकार्थी शब्दों में यह घोषित करता है कि संघ की राजभाषा हिन्दी और राजलिपि देवनागरी होगी। इसके उपरान्त 351 तक जितने अनुच्छेद हैं, वे सब भाषा-विषयक भिन्न-भिन्न समस्याओं पर, उसकी व्यवहारिकता पर, उसके विकास आदि पर प्रकाश डालते हैं।''[1]

भारत का अपना संविधान लागू हुए और हिन्दी को 'राष्ट्रभाषा' के पद पर प्रतिष्ठित हुए 64 वर्ष हो गये, पर वास्तविक अर्थों में अभी तक न ही हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा बन सकी और न देवनागरी लिपि को भाषा की राष्ट्रलिपि बनने का गौरव प्राप्त हो सका। डॉ. दान बहादुर पाठक और डॉ. मनहर गोपाल भार्गव ने राष्ट्र भाषा की परिभाषा इन शब्दों में प्रस्तुत की है - ''जब किसी भाषा को समस्त राष्ट्र की भाषा मान लिया जाता है, तब वह भाषा राष्ट्र भाषा कहलाती है। जब कोई बोली विभाषा का रूप धारण कर लेती है और क्रमशः साहित्य रचना का माध्यम बनकर भाषा का रूप धारण कर लेती है और फिर लोकप्रियता के फलस्वरूप समस्त राष्ट्र में विचार विनिमय का माध्यम बन जाती है, तब वह राष्ट्र भाषा के पद को प्राप्त करती है। कुछ विद्वानों की राय है कि राष्ट्र भाषा वह भाषा है, जिसे राजकीय क्षेत्र में समस्त राष्ट्र के कार्य संचालन की स्वीकृति प्राप्त हो। हमारे विचार से भाषा राजकीय नहीं, सामाजिक सम्पत्ति है। राजकीय क्षेत्र में प्रयुक्त भाषा राजभाषा कही जानी चाहिए। क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि राजभाषा और राष्ट्रभाषा के पद को .... उदाहरण के लिए हिन्दी भाषा भी राष्ट्रभाषा है, क्योंकि वह जन -जन की कण्ठहार है, परन्तु राजभाषा के आसन पर अभी तक प्रतिष्ठित नहीं हो पाई है। इस प्रकार राष्ट्रभाषा वस्तुतः भाषा का वह व्यापक रूप है, व्यवहार समस्त राष्ट्र में होता है। राष्ट्रभाषा वस्तुतः देश की संस्कृति एवं आदेशों को तथा देशवासियों की आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करती है।''[2]

भारतीय संविधान हिन्दी को राष्ट्रभाषा की पदवी न देकर उसे राज्य भाषा स्वीकार किया। संविधान द्वारा राज्यभाषा स्वीकार करना महत्त्वपूर्ण नहीं है महत्त्वपूर्ण विषय है-व्यवहारिक स्वरूप प्रदान करना।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 (1) के अनुसार 'हिन्दी' संघ की राज्यभाषा है। राज्यभाषा का स्थान हिन्दी को 26 जनवरी 1950 को ही प्राप्त हो गया, जब संविधान लागू हुआ। डॉ. दान बहादुर पाठक एवं डॉ. मनहर गोपाल भार्गव राज्य भाषा का लक्षण इस प्रकार बताया है- ''किसी राज्य द्वारा विचार विनिमय के साधन के रूप में स्वीकृत भाषा को राज्यभाषा कहते हैं। प्रायः राष्ट्रभाषा और राज्य भाषा को समानार्थी समझा जाता है, किन्तु कभी-कभी दोनों में वैभिन्य हो जाता है। आज सम्पूर्ण देश विभिन्न राज्यों में विभाजित है और प्रत्येक राज्य की राजकाज चलाने के लिए एक भाषा है। यह भाषा राज्यभाषा कहलाती है।''[3]

अनुच्छेद 346 के अनुसार संघ तथा विभिन्न राज्यों के पारस्परिक सम्पर्क एवं पत्र व्यवहार की भाषा के रूप में भी हिन्दी को मान्यता प्रदान की गई। अनुच्छेद 345 के अन्तर्गत संसद तथा राज्य विधान मंडलों को यह अधिकार दिया गया

कि वे हिन्दी को अपने-अपने राज्यों की राज भाषा के रूप में अपनाए और अनुच्छेद 351 के माध्यम से हिन्दी भाषा का प्रसार एवं विकास करना संघ का कर्त्तव्य बना दिया गया और न्यायालय में भी हिन्दी भाषा को स्थान प्रदान किया गया। सन् 1898 में हिन्दी भाषा का प्रवेश अदालतों में भी हो गया। किन्तु उत्तर प्रदेश की राज्यभाषा हिन्दी घोषित होने में कितनी असुविधा हुई, इसका अनुमान बाल कृष्ण शर्मा नवीन के इन विचारों के माध्यम से लगाया जा सकता है -''विधान परिषद् के कांग्रेस दल में एक प्रश्न उठ खड़ा हुआ है कि हिन्दी देवनागरी का प्रस्ताव कांग्रेस ने जब बहुमतों को स्वीकार कर लिया है तब कांग्रेस दल के सदस्यों को विधान परिषद् में मनमाने ढंग से मत देने की स्वतन्त्रता हो या न हो कांग्रेस दल के विधान परिषद् वे सदस्य हो हिन्दी देवनागरी के समर्थक है, यह चाहते हैं कि इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर दल के सदस्यों को प्रस्ताव के पक्ष में ही मत देने का आदेश दिया जाना चाहिए। प्रस्ताव के विपक्ष में मत देने वाले अल्पमतीय सदस्यों को यह स्वतन्त्रता नहीं होनी चाहिए कि वे विधान परिषद् में मत देते समय विपक्ष में अपनी सम्मति प्रकट करें। प्रस्ताव विरोधियों का यह मन्तव्य है कि यह भाषा-विषयक प्रश्न ऐसा महत्त्वपूर्ण एवं सात्विक नहीं है कि इसका सीधा सम्बन्ध उनके आत्मविश्वास की प्रतिकूल मत देने के लिए विवश करना घोर अन्याय होगा। विधान परिषद्स्थ कांग्रेस दल की सभा के सभापति आचार्य कृपलानी सदस्यों को मतदान स्वतन्त्रता देने के पक्ष में प्रतीत होते हैं। हिन्दी देवनागरी वाले प्रस्ताव को सफलतापूर्वक पास कराने के लिए यह सुझाव हमें तो यही प्रतीत होता है कि विधान परिषद्स्थ कांग्रेस दल अपने उन सदस्यों को जो इस प्रश्न को आत्मिक विश्वास मूलक मानते हैं केवल इतनी स्वतन्त्रता दे, कि वे विधान परिषद् में वोट के समय तटस्थ रह जाये। किसी भी अवस्था में ऐसे सदस्यों को प्रस्ताव के विपक्ष में वोट देने की स्वतन्त्रता नहीं दी जा सकती। मेरा तात्पर्य यह है कि इस समय हमारे सामने अनेक कठिनाइयाँ हैं और जब तक वह हमारे हिन्दी-भाषी कर्मठ, विद्वजन विधान परिषद् के समय हमारी सहायता को नहीं आयेंगे तब तक इस प्रश्न को हिन्दी देवनागरी के पक्ष में निर्णीत करा लेना अत्यन्त कठिन, कदाचित् असम्भव भी होगा।''[4]

विधि के प्राधिकृत मूल पाठों के लिए अंग्रेज़ी को अनिवार्य बनाते हुए भी अनुच्छेद 345 में यह व्यवस्था कर दी गई थी कि राज्य विधानमण्डल राज्य के राजकीय प्रयोजनों के लिए हिन्दी अथवा राज्य में प्रयुक्त होने वाली किसी अन्य भाषा के प्रयोग की व्यवस्था विधि द्वारा कर सकता है। यह व्यवस्था उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश तथा राजस्थान में राज्य अधिनियमों द्वारा कर दी गई है और इस प्रकार उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश तथा राजस्थान के विधान मंण्डलों में अंग्रेज़ी का प्रयोग समाप्त हो चुका है किन्तु हरियाणा तथा हिमाचल प्रदेश राज्यों में उसका प्रयोग अभी प्रचलित है, जबकि इन राज्यों को भी हिन्दी भाषी राज्य घोषित किया जा चुका है।

डॉ. मोती बाबू ने लिखा है- ''संविधान का भाग 17 हिन्दी के पक्ष में लिखा गया एक ऐसा वचन पत्र है, जिसमें ऋण की वापसी के लिए तो कोई समय नियत नहीं किया गया है, किन्तु ऋण दाता के लिए यह अनिवार्य कर दिया गया है कि वह ऋण जब तक माँगता रहे, तब तक उसे ऋण देता रहे। संविधान ने घोषणा तो हिन्दी के पक्ष में की, परन्तु प्रयोग अनिवार्य किया अंग्रेज़ी का स्वयं संविधान के निर्माण के लिए अंग्रेज़ी को अपनाया गया। उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों की कार्यवाहियों के लिए तथा केन्द्र एवं राज्य के कानूनों के प्राधिकृत पाठों के लिए अंग्रेज़ी का प्रयोग अनिवार्य कर दिया गया।''[5]

इस प्रकार की कठोर और असहनीय व्यवस्था हमारे स्वतन्त्र भारत के संविधान के द्वारा की गई है। इस अधिनियम अथवा व्यवस्था के द्वारा उस वातावरण को ध्वस्त कर दिया गया जो हिन्दी के प्रयोग हेतु निर्मित किया गया था। उत्तर प्रदेश विधान मण्डल ने सन् 1947 से ही हिन्दी का प्रयोग आरम्भ कर दिया था और विधेयक पारित होने लगे थे, किन्तु 26 जनवरी, 1950 को संविधान लागू होने पर यह आवश्यक हो गया कि राज्य के विधान मण्डल के विधेयकों तथा अधिनियमों के प्राधिकृत मूल पाठ अंग्रेज़ी में हों। अतः उत्तर प्रदेश विधान मण्डल का उस वर्ष का पहला अधिनियम (उत्तर प्रदेश लैंग्वेज एक्ट - 1950) अंग्रेज़ी में पारित करके इस बात का अधिकार लेना पड़ा कि विधेयक हिन्दी में प्रस्तुत किया जा सके। इसके पश्चात् ही विधेयक हिन्दी में प्रस्तुत किया जा सके। उनके साथ अंग्रेज़ी के मूल पाठ प्रकाशित करने की व्यवस्था अब भी चल रही है।

न्यायालयों में भाषा के सम्बन्ध में भी राजनीति का सहयोग स्पष्ट होता है संविधान के अनुच्छेद 348 (1) में उच्चतम न्यायालय की भाषा अंग्रेज़ी हो गई। जबकि संसद को यह अधिकार दिया गया कि वह हिन्दी के महत्त्व को न्यायालयों में स्थान प्रदान कर सके किन्तु संसद की तरफ से कोई भी कदम नहीं उठाया गया और न ही भविष्य में संसद इस विषय पर विचार करने को उत्साहित लग रही है। उच्च न्यायालयों की स्थिति भी सर्वोच्चय न्यायालयों से भिन्न नहीं रही है। राज भाषा अधिनियम 1963 की धारा 7 में यह व्यवस्था की गई कि राज्यपाल राष्ट्रपति के सहयोग से उच्च न्यायालयों में आदेशों,

निर्णयों, डिग्रियों में राज्य की भाषा के प्रयोग की अनुमति प्रदान कर सकते हैं। इसके साथ अंग्रेज़ी में अनुवाद करना आवश्यक बताया गया। यही कारण है कि संसद कोई कदम नहीं उठाती जब अंग्रेज़ी भाषा में ही काम चल रहा है तो कोई हिन्दी का पाठ और उसका अंग्रेज़ी अनुवाद करने की दोहरी मेहनत क्यों करें। संविधान के अनुच्छेद 344 में यह आदेश दिया गया कि आयोगों की स्थापना आवश्यक है अतः संविधान बनने के 5 वर्ष पश्चात् प्रथम आयोग एवं पुनः 5 वर्ष पश्चात् द्वितीय आयोग की स्थापना अनिवार्य है। इस प्रकार संविधान के आदेशानुसार प्रथम आयोग का गठन किया गया जिसने हिन्दी भाषा के महत्त्व को स्थापित करने के छोटे-छोटे प्रयास किये किन्तु आशातीत परिणाम सामने नहीं आए। तत्पश्चात् द्वितीय आयोग का गठन किया जाने लगा जो वर्तमान में कभी प्रस्तुत ही नहीं किया गया।

इस प्रकार न्यायिक क्षेत्र में यदि देखा जाए तो हिन्दी को वह स्थान प्राप्त नहीं हो सका जो होना चाहिए था। न्यायालयों से लेकर संसद तक तथा संसद से लेकर हमारे संविधान तक जो स्थिति हिन्दी भाषा की परिलक्षित होती है उससे यही कहा जा सकता है कि हिन्दी मात्र कहने के लिए ही भारत की राष्ट्र भाषा है, परन्तु राष्ट्र भाषा के स्थान पर अंग्रेज़ी ने आकर हिन्दी के महत्त्व को दबा दिया है। राष्ट्र की भाषा तो बहुत बड़ी बात है, हिन्दी उन प्रदेशों की राज्य भाषा भी नहीं बन सकी है, जो राज्य हिन्दी भाषी राज्यों की सीमा क्षेत्र में आते हैं। अंग्रेज़ी का प्रयोग हमारे लिए आवश्यक है क्योंकि वह हमारे कार्य क्षेत्र में हमें उच्च स्थान प्रदान करती है हमारी प्रगति में सहयोग करती है बाहरी देशों में जाने पर हमारा उस देश के लोगों से सम्पर्क बनाने में सहयोग करती है किन्तु हिन्दी हमारी राष्ट्र भाषा है हमारा अस्तित्व हमारी राष्ट्र भाषा से होता है। हमारी राष्ट्र भाषा के माध्यम से हम अन्य देशों में हिन्दुस्तानी माने जाते हैं। हमारी पहचान हमारी राष्ट्र भाषा हिन्दी है क्या हम हमारी पहचान को भुला कर प्रगति के शिखर पर पहुँचना चाहेगा या ऐसा करना उचित है ? नहीं क्योंकि अंग्रेज़ी हमारी कार्य क्षेत्रीय भाषा है हमारी उन्नति में सहयोगी भाषा है किन्तु हमारी पहचान नहीं। हमें अंग्रेज़ी को स्थान देते हुए हिन्दी भाषा को सम्मान देना चाहिए और इस कार्य को पूर्ण करने के लिए हमें संविधान में संशोधन करने की आवश्यकता है। इस कार्य के लिए दो तिहाई जनता के बहुमत की आवश्यकता है कुछ या अल्पसंख्यक बहुमत वाली सरकार ऐसा परिवर्तन करने में असफल ही साबित होगी आज भारतवासियों के मन में अंग्रेज़ी भाषा का मोह अत्याधिक बढ़ गया है। हमें अंग्रेज़ी के प्रति मोह समाप्त नहीं करना है हमें हिन्दी को उसका प्रतिष्ठित स्थान प्रदान करना है क्योंकि सही अर्थ में हमारी उन्नति तभी होगी जब हमारी भाषा की उन्नति होगी।

सन्दर्भ-

1. दैनिक जनसत्ता, (दिल्ली से प्रकाशित) सितम्बर, 1953 के अंक से उद्धृत लेख भारतीय संविधान की भाषा विषयक नीतियों का विरोध क्यों?, बालकृष्ण शर्मा नवीन
2. डॉ. दान बहादुर पाठक/डॉ. मनहर गोपाल भार्गव, भाषा विज्ञान, पृ. 225
3. वही, पृ. 228
4. बाल कृष्ण शर्मा नवीन, पंचम खण्ड, नवीन गद्य रचनावली, पृ. 28
5. डॉ. मोती बाबू, भारतीय संविधान में हिन्दी की स्थिति, पृ. 22

प्रवक्ता, एमिटी यूनिवर्सिटी लखनऊ कैम्पस

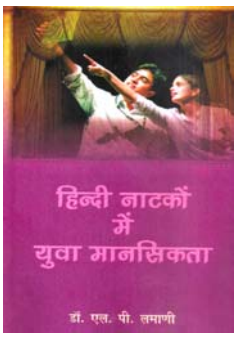

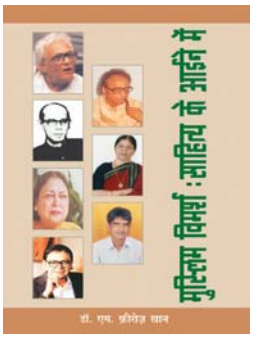

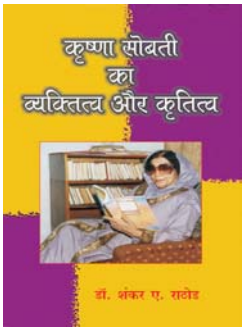

21वीं सदी के साहित्य में दलित विमर्श

(ओमप्रकाश वाल्मीकि के कहानियों के संदर्भ में)

दुर्गा खत्री

स्वतंत्र भारत के संविधान निर्माताओं ने देश के दलित वर्ग के उत्थान एवं विकास के लिए संविधान में अनेक प्रावधान किये गये। आज़ादी के बाद हमारे देश के नेताओं ने देश के लोकतांत्रिक समाजवाद की स्थापना का संकल्प व्यक्त किया जो समानता तथा न्याय पर आधारित था- ''इसमें दलित वर्ग के उत्थान के लिए पंचवर्षीय योजनाएं, शिक्षा समानता, अस्पृश्यता आंदोलन, समुदायिक विकास योजना, समाज कल्याण कार्यक्रम, अन्त्योदय योजना आदि उपायों को अपनाया गया परंतु अनेक प्रयासों के बावजूद भी समाज के दलित वर्ग की समस्यायें कम नहीं हुई हैं।''[1]

भारतीय समाज में दलित के लिए विभिन्न शब्दों का प्रयोग हुआ है। जैसे-अछूत, हरिजन, अस्पृश्य, पंचम आदि। इन शब्दों का दलित वर्ग के लिए प्रयुक्त किया जाना हिंदू समाज की तुच्छ मानसिकता का परिचायक हैं। दलित का सामान्य अर्थ है-कुचला हुआ, रौंदा हुआ। अतः दलित साहित्य का अर्थ है- ''वह साहित्य जो दलितोत्थान के लिए लिखा गया हो।''[2]

डॉ. प्रेमशंकर के अनुसार-''दलित साहित्य दलितों का दलित द्वारा दलितों की भाषा में लिखा गया जीवंत साहित्य है जो अपने सच्चे अनुभवों से सोए हुए साथियों को जगाकर उनकी गरिमा, गौरव, अस्मिता, आत्माभिमान तथा अस्तित्व के प्रति विश्वास करने का साहित्य है।''[3]

हिंदी दलित साहित्य आज से लगभग चार सौ वर्ष पहले अस्तित्व में आ चुका था। इस बात के प्रमाण हमें कबीर व रैदास के साहित्य में मिलते हैं। रैदास स्वयं दलित वर्ग के होने के कारण समाज में समानता के भाव प्रदर्शित करते हुए लिखते है-''ऐसा चाहूँ राज जहाँ मिले सब को अन्न।/छोटा बड़ा सब सम बसे रैदास रहे प्रसन्न।''[4]

इसी प्रकार स्वयं समाज सुधारक के रूप में हमारे समक्ष जातिवाद के लिए लिखते है-''कबीर कुआँ एक है पनिहारी है अनेक/बर्तन सबके भिन्न है पानी सब में एक।''

आधुनिक काल में भारतेंदु, प्रेमचंद, निराला, जैनेंद्र, अमृतलाल नागर, नागार्जुन, त्रिलोचन, मुक्तिबोध, धूमिल आदि दलित विमर्श के मूल प्रेरणा बिंदु रहे हैं। प्रेमचंद के रंगभूमि और कर्मभूमि उपन्यास में दलितों के प्रति लिखा गया है और कहानियों में भूतकर्म व कफ़न आदि प्रमुख है। जिसमें दलित पर सवर्ण का प्रतिनिधित्व दर्शाया हैं।

आज विकासशील देशों और समाजवादी शासकों के अधीन देशों में दलित मानव का जीवन सामाजिक और आर्थिक यंत्रणाओं के कारण अधिक दारूण और अमानवीय हैं। दलित समाज को स्वर्ण समाज हमेशा से नकारता आया हैं। यही नकार और आंतरिक टूटन को विभिन्न साहित्यकारों ने अपनी लेखनी द्वारा उभारने की कोशिश की हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि मुख्यतः दलित चेतना के लेखक है इनकी कहानियों में संपूर्ण रूप से दलितों के प्रति पक्षधरता दर्शायी गई हैं। इनके साहित्य को पढ़कर ऐसा लगता है कि मानों कथाकार आधुनिक समय अर्थात् आज की ही बात कह रहे हो क्योंकि आज समाज आधुनिकता व वैश्वीकरण के रंग में रंगकर बदल तो चुका है परंतु मानसिक संकीर्णता ज्यों की त्यों बनी है इसी मानसिकता का चित्रण 'शवयात्रा' शीर्षक कहानी में दर्शाया गया है-यह कहानी दो दलित जातियों-बल्हारों व चमारों की है। जिनके द्वारा दर्दनाक दलित की आंतरिक पीड़ा का चित्रण किया गया है कि जिसे पढ़कर शरीर प्राणविहीन बन जाता हैं। कहानी के पात्र सूरजा बल्हार की पोती के बीमार होने पर डॉक्टर ने दूर से ही बिना हाथ लगाए दवा पकड़ा दी और चेकअप करने से साफ इंकार कर दिया। फिर उस बीमार लड़की को शहर ले जाने के लिए चमारों ने अपनी ठेलागाड़ी देने से मना कर दिया ऐसे में उसकी पोती रास्ते में ही दम तोड़ देती हैं। फिर गाँव के चमार लोग उसे जलाने के लिए लकड़ी नहीं देते और न श्मशान में घूसने देते हैं। इस प्रकार समाज की जातिवाद के प्रति मानसिकता वाल्मीकि जी ने बताई हैं।

'प्रमोशन' नामक कहानी में भी जाति व्यवस्था के प्रति विद्रोह की घटना का वर्णन किया गया है। सुरेश नाम का व्यक्ति फैक्टरी में सफाई कर्मचारी के रूप में कार्यरत है। वह भंगी कार्य से दुःखी है क्योंकि लोग उसे गिरा हुआ मानते हैं। जब सुरेश यूनियन का सदस्य बन जाता है और जिस कारण उसका प्रमोशन सफाई वाले के स्थान से मजदूर के पद पर हो जाता

है। मगर मजदूर लोग उसका बहिष्कार करते हैं और हड़ताल पर उतर जाते हैं कि हम एक भंगी को हमारी यूनियन में नहीं आने देंगे और सुरेश का मनोबल गिरा देते है और वापस पीछे का रास्ता दिखा दिया जाता है। इस प्रकार दलितों की हालत आज भी दयनीय बनी हुई है क्योंकि उनके आगे बढ़ने में उनकी जाति ही रोड़ा बनी हुई हैं।

आज करोड़ों लोगों को पशुओं की तरह जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य किया जाता है। ... 21वीं सदी में अछूतों की स्थिति सुधारने के लिए अनेक साहित्यकारों ने अथक प्रयास किये। इन रचनाकारों ने संत्रास भरे जीवन की वेदना को स्वयं अनुभव किया है। इसलिए ऐसा कहा गया है-''उसी पीड़ा को वही जानता/जिस प्राणी के तन में होती/दैविक दुःख से अधिक वेदना/जाति के बंधन में होती।''

यह बंधन ओमप्रकाश वाल्मीकि ने स्वयं अनुभव किया है और जो साहित्य उनके द्वारा लिखा गया वो मानव मुक्ति का साहित्य कहलाया। ओमप्रकाश वाल्मीकि का साहित्य हमें उस समाज से गुज़ारता है जहाँ घृणा वरेण्य है, शोषण नैतिक है, दमन जायज है, असमानता स्वीकृत है और अत्याचार का अंतहीन सिलसिला है। 'ये अंत नहीं' शीर्षक कहानी में जब दलित लड़की बिरमा के साथ दुराचार होता है और विरोध करने पर अन्याय व अपमान के सिवाय कुछ नसीब नहीं होता। दलित लड़की का भाई जब न्याय के लिए गाँव के सरपंच के पास जाता है वहाँ उसकी बात को सुना ही नहीं जाता है और फिर वह पुलिस स्टेशन जाता है वहाँ भी उसे धक्के मार कर निकाल दिया जाता है क्योंकि वह दलित लड़की का भाई होता है। इस प्रकार दलित की हालत बद से बदतर होती हुई इस कहानी में दर्शायी गई है। दलित वर्ग अपने पर होने वाले अन्याय की तरफ भी आवाज़ नहीं उठा सकते हैं।

इसी प्रकार 'घुसपैठिये' कहानी अनुसूचित जाति व जनजाति के लोगों से संबंधित है जो लोग आरक्षण के आधार पर कहीं भी प्रवेश पाते हैं तो उन्हें घुसपैठिये कह कर अपमानित किया जाता है यही नहीं दलित छात्रों के साथ हॉस्टल में दुराचार और अन्याय इस हद तक होते है कि छात्र आत्महत्या तक कर लेते है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपने समय में यही सब देखा और उसका चित्रण अपनी कहानियों में किया हैं।

जिस प्रकार डॉ. अंबेडकर ने कहा-''गुलाम को उसकी गुलामी का एहसास दिला दो वो अपनी स्वतंत्रता का मार्ग स्वयं ढूँढ़ लेगा।''[5] दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि इसी मिशन में तत्पर नज़र आए हैं। उन्होंने समाज की ज्वलंत समस्याओं में से दलित समस्या पर अपनी लेखनी चलाई और उनकी तथा स्वयं की मुक्ति में तत्पर रहें। लेखक स्वयं दलित होने के कारण दलित समाज में अंदर तक झाँकने में सफ़ल रहे हैं जिसे पढ़कर समाज के उस वर्ग की सच्चाई सामने आती है जो 21वीं शताब्दी में भी क्रूर वर्ण और जाति के आँकड़ों पर विश्वास रखती है। यह एक घृणित किंतु नग्न सत्य है कि हमारे समाज का ताना-बाना जाति व्यवस्था के घेरे में आवृत्त है। इस स्थिति का चित्रण हमें 'कूड़ादान' कहानी में मिलता है जो जाति आधारित विद्रोह की कहानी है। जिसमें दलित दंपति अपनी जाति न बताकर किराये का मकान लेते हैं और मकान मालिक को जब पता चलता है कि यह चमार जाति के हैं तो उसे दलित चूहड़-चमार आदि कई गालियाँ देते है और खड़े पाँव मकान खाली करने के कह दिया जाता है। ब्रह्मास्त्र' कहानी में लेखक ने वर्ण व्यवस्था की उस भयानक बुराई को अभिव्यक्ति दी है, जिसने समाज को कई टुकड़ों में बाँट दिया है। इसमें दोस्त की शादी में जा रहे दलित मित्र का विरोध कर उसे बस में से वापस उतार दिया जाता है और कहा जाता है कि ''तू अपनी औकात में रह यह किसी डोम चमार की बारात नहीं है यह नैथानियों की बारात है।''[6] इस प्रकार ओमप्रकाश वाल्मीकि का दलित साहित्य संकीर्णता का साहित्य नहीं है और न ही वर्णवाद गढ़ने वाला है यह मानवीय मूल्यों के सच्चे दृष्टिकोण को दर्शाया हैं।

संदर्भ-

1. डॉ. सियाराम, नई सदी के साहित्यिक एवं सामाजिक विमर्श-2012, ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ. 8
2. डॉ. सोहनलाल सुमनाक्षर, दलित साहित्य, शिखर की ओर, पृ. 301
3. दलित संघर्ष : संस्कृति व साहित्य की सबल अभिव्यक्ति, पृ. 212-213
4. नई सदी के साहित्यिक एवं सामाजिक विमर्श-2012, पृ. 328
5. डॉ. जोगिंद्र कुमार संधु, दलित चेतना के संदर्भ में कथाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि, साहित्य संस्थान गाजियाबाद, पृ. 38
6. ओमप्रकाश वाल्मीकि 'घुसपैठिये' राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 2003 पृ. 83

शोध छात्रा-हिंदी विभाग, वीर नर्मद दक्षिण गुजरात विश्वविद्यालय, सूरत

छायावादी काव्य में नारी

प्रा. बालु भोपू राठोड

छायावाद में नारी के प्रति सर्वथा नवीन दृष्टिकोण अपनाया गया है। यहाँ नारी वासनापूर्ति का साधन नहीं बल्कि माता प्रेयसी आदि विविध रूपों में चित्रित है, किंतु उसका प्रेयसी का ही रूप प्रधान है, यह प्रेयसी पार्थिव जगत् की स्थूल नारी न होकर कल्पना लोक की सुकुमार देवी है। छायावादी कवियों ने अपने काव्यों में नारी के सूक्ष्म सौंदर्य का वर्णन किया है।

'प्रसाद युग' में नारी जागरण हो रहा था। समाज को जागृत करने के लिए नारी घर से बाहर आ रही थी। उनके त्याग एवं ममता से उत्साह वृद्धि हो रही थी। प्रसाद जी ने 'कामायनी' में नारी महिमा का वर्णन किया है। श्रद्धा वह शक्ति है, जो अपनी दया, माया, ममता, अगाध विश्वास आदि से कठोर पुरुष को कल्याणकारी मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करती है। छायावादी कवियों की नारी हमेशा प्रेरणादायी रही है। ख़ासकर उनका सौंदर्य जो अनुभूतिजन्य है। इस संबंध में अंजू शर्मा लिखती है-''छायावादी नारी अपनी सीमितता में असीमता, अपूर्णता में पूर्णता, पिपासा में संजालता तथा नश्वरता में अमरता को छिपाए हुए अनादिकाल से जीवन और साहित्य की प्रेरणास्रोत है।''[1]

जयशंकर प्रसाद जी ने नारी को 'श्रद्धा' का स्थान तो दिया है, लेकिन पुरुषों को सुखी बनाने में उसके जीवन की सार्थकता को स्वीकार किया है। यह श्रद्धा कवि की संकल्पात्मक अनुभूति की मधुरतम सृष्टि है-'नारी तुम केल श्रद्धा हो,/विश्वास-रजत नग-पगतल में,/पीयूष-स्रोत सी बहा करो/जीवन के सुंदर समतल में।''[2]

'कामायनी' की श्रद्धा पुरुष का नेतृत्व करती है। वह मन को कर्मशील बनाती है। प्रसाद जी उसे 'सर्वमंगला' के रूप में अपनाते है। श्रद्धा का पत्नी रूप उद्दात धरातल पर व्यक्त हुआ है क्योंकि अपने अहंकारी पति मनु द्वारा त्यक्त होने पर वह एकांत में कसकती वेदना से व्याकुल हो जाती है परंतु निराश होकर जीवन का दांव नहीं हारती। उसका मातृत्व रूप भी उद्दात है। अपने पुत्र द्वारा 'माँ की पुकार सुनकर उसकी सुनी कुटियाँ ही नहीं गूँजती बल्कि मन भी उल्हासित हो उठता है।

'ईडा' तो वैज्ञानिक दृष्टि से परिपूर्ण है जो भावात्मकता की अपेक्षा बुद्धिप्रधान है, किंतु नारीत्त्व का एहसास उसे अच्छी तरह है। नारी सुलभ भावनाएँ श्रद्धा के समान उसमें भी है।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' को नारी चित्रण की प्रेरणा बाबू रविंद्र से मिली है। 'तुलसीदास' कविता में रत्नावली के चरित्र द्वारा भारतीय नारी के स्वरूप को चित्रित किया है। सामाजिक परिवेश में निराला ने नारी के विविध रूपों का जो वर्णन किया है वह उनकी प्रगतिशील चिंतनधारा की पुष्टि करता है। हमारी दृष्टि में निराला को ओज, पुरुष, अहं का कवि कहकर नारी भावना के प्रति उन पर शुष्क व्यवहार का आरोप लगाया जाता है जो निराधार है। नारी को कवि ने शक्ति, माता, प्रेयसी, बहन आदि रूपों में प्रस्तुत किया है। 'पंचवटी प्रसंग' में लक्ष्मण सीता को अपनी माता मानते है-'आदि शक्ति रूपिणी/शक्ति से जिनकी शक्तिशलियों में सत्ता है/माता है मेरी वे।''[3]

सीता के मातृत्व रूप को भी अनेक प्रसंगों में देखा जा सकता है-''शिशु पाते माताओं के वक्षः स्थल पर भूल गान/माताएँ भी पाती शिशु के अधरो पर अपनी मुस्कान।''[4]

उक्त नारी रूप के अतिरिक्त और भी कुछ नारी के रूप है जिनका वर्णन निराला ने अपने काव्य में किया है। जैसे प्रथम समागम के समय लजाती, सकुचाती सुंदरी का सौंदर्य चित्रण निम्न प्रकार है-''स्पर्श से लाज जगी/अलक-पलक में छिपी छलक/उर से नवराग जगी।/चुंबन, चकित, चतुर्दिक चंचल/हेर, फेर, मुख कर बहु सुख-छल/कभी हास, कभी त्रास, साँस बल/उर सरिता उमगी।''[5]

भारतीय नारी की आंतरिक पीड़ा विशेषतः विधवाओं की अतिभयानक है। निराला ने 'विधवा' नामक कविता में नारी की आंतरिक पीड़ा, खालीपन और शांति का करुणामय सुंदर चित्रण किया है-''वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा सी/वह दीपशिखा सी शांत भाव में लीन/वह क्रूर काल तांडव की स्मति-रेखा-सी/वह टूटे तरू की छूटी लता-सी दीन/दलित भारत की ही विधवा है।''[6]

नारी शहर की हो या देहात की निराला की पैनी-सूक्ष्म

सौंदर्यमयी नज़र से बच नहीं सकती। श्रमजीवी नारी का चित्रण उनके काव्य में देखते ही बनता है-''श्याम तन, भर बँध यौवन/मत-नयन-प्रिय-कम-रत मन/गुरु हथौड़ा हाथ/करती बार-बार प्रहार।''[7]

स्पष्ट है कि निराला नारी सौंदर्य के चतुर चितेरे है उनकी प्रशंसा करते हुए डॉ. भगीरथ मिश्र 'निराला काव्य का अध्ययन' में लिखते है-''निराला ने अपने काव्य में नारी की जो छवियाँ अंकित की है वे अधिकांश शिव और सुंदर है चाहे वे नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे, खेली होली; प्रियकर-प्रेयसी के मिलन पर आधारित रूपक हो। या तन की, मन की, धन की हो तुम जैसी स्त्री जाति की दिव्यता का वर्णन करने वाली रचना हो।''[8]

सुमित्रानंदन पंत ने नारी के प्रति पुरुष की संकीर्ण दृष्टि की अपनी अनेक कविताओं में कड़ी निंदा की है। नारी के प्रति पंतजी की दृष्टि प्रारंभ से ही आदर्शवादी रही है। उन्होंने नारी के प्रति अनुराग की अनुभूति को अंतःकरण की मलिनता के रूप में कभी नहीं देखा-''तुम्हारे छूने में था प्राण/संग में पावन गंगा स्नान/तुम्हारी वाणी में कल्याणी/त्रिवेणी की लहरों का गाना।''[9]

भारतीय पुरुष संस्कृति नारी को हमेश द्वितीय स्थान दिया है। उसे मात्र एक वस्तु के रूप में देखा गया है। पंत ने अपनी कविता में नारी पर होते आ रहे अन्याय का कड़ा विरोध किया है। रूढ़ि एवं परंपरा के शिकंजे में फंसी हुई नारी को मुक्त करने का उन्होंने नारा लगाया है-''मुक्त करो नारी को मानव।/चिर बंदिनी नारी को/युग-युग की बर्बर कारा से /जननी सखी प्यारी को।''[10]

पंत ने नारी सौंदर्य का जो चित्रण किया है उसमें मांसलता की तुलना में सहज, स्नेह एवं सौंदर्य अधिक मात्रा में दिखाई देता है, जो कवि को 'सौंदर्य का कवि' इस उपमा से अलंकृत करता है-'स्नेहमयी-सुंदरतामयी/तुम्हारे रोम-रोम से नारी मुझे है स्नेहापार/तुम्हारा मृदु उर ही सुकुमारी मुझे है स्वर्गागार।''[11]

तो कहीं पर नारी के पावन रूप का चित्रण किया है। अपनी नारी दृष्टि को कवि ने अधिकतर मात्रा में प्रकृति के माध्यम से अभिव्यक्त किया है-''कितनी सुंदर हो तुम/शोभा के मंदिर सी/स्वप्नों के सुकुमार अजिर-सी/चंपक फूलों के तुम स्वर्णिम गौर शिखर सी।''[12]

'आधुनिक मीरा' 'नीर भरी दुःख की बदली' महादेवी वर्मा के काव्य में नारी का जो रूप वर्णित है वह अधिक से अधिक स्वानुभूतिपरक है-''मैं नीर भरी दुःख की बदली/विस्तृत नभ का कोना-कोना/कभी न कोई अपना होना/इतिहास इतना परिचय यहीं/उमड़ी कल थी मिट आज चली।''[13]

महादेवी जी के काव्य में नारी वर्णन पीड़ा भरा है जो एक अलौकिक शक्ति (अज्ञात प्रियतम) से मिलन हेतु छटपटाती हुई दिखायी देती है। उनके काव्य में नारी चित्रण केवल दुःख भरा है ऐसा कहना उचित नहीं है, क्योंकि उनके काव्य में नारी वेदना के प्रति जितना रूझान है, उतना ही रूझान नारी को संबल प्रदान करने में है। कवयित्री ने अपने काव्य में भारतीय नारी के मन में जो संकीर्णताओं की दीवार थी उसे तोड़ा है। कवयित्री ने भारतीय सामंती-संस्कारों और मूल्यों के प्रति खुला विद्रोह किया है। नारी के कवित्वमूलक आदर्शीकरण में सुख से जीने का यहाँ भाव नहीं है। महादेवी जी स्वयं एक नारी होने के कारण नारी समस्या, संवेदना से रू-ब-रू होती है इसलिए अपने काव्य में वह नारी को शक्ति सामर्थ्य प्रदान करती है।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि छायावाद में जो नारी का विविध अंगों का चित्रण किया है, वह वाकई श्लाघनीय है। छायावादी काव्य की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि इसने नारी को नारी न मानकर सर्वसमावेशक सत्ता का मानदंड माना है।

संदर्भ-

1. डॉ. अंजु शर्मा, निराला की सौंदर्य चेतना, पृ. 39
2. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, पृ. 5
3. (सं.) नंदकिशोर नवल, निराला की रचनावली, भाग-2 पृ. 43
4. वही, पृ. 44
5. वही, पृ. 220
6. (सं.) नंदकिशोर नवल, निराला की रचनावली भाग-1 पृ. 72
7. वही, पृ. 343
8. डॉ. भगीरथ मिश्र, निराला का काव्य अध्ययन, पृ. 59
9. सुमित्रानंदन पंत, पल्लव, पृ. 118
10. सुमित्रानंदन पंत, पौ फटने से पहले, पृ. 114
11. पल्लव, पृ. 20
12. पौ फटने से पहले, पृ. 114
13. डॉ. अरूणेंद्र सिंह राठौर, महादेवी वर्मा की काव्य चेतना, पृ. 50

सहायक प्राध्यापक (हिंदी विभाग) शहाजीराजे महाविद्यालय, खटाव, जिला-सातारा (महाराष्ट्र)

भारतीय संविधान और राजभाषा हिंदी

डॉ. रजनी चौबे

संपूर्ण विश्व में राष्ट्रों द्वारा अपनी राष्ट्र की गरिमा, एकता एवं अखण्डता तथा अंतर्राष्ट्रीय पटल पर स्वराष्ट्र के सम्मान को प्रदर्शित तथा प्रतिस्थापित करने के लिए राष्ट्र भाषा का सृजन किया गया है एवं उन्हें राज्यभाषा का सम्मान प्रदान किया गया है। इस संदर्भ में भारत ने भी इसके लिए संविधान निर्माण के पूर्व से ही अथक् प्रयास करना शुरू कर दिया था। क्योंकि इस देश की विशाल जनसंख्या द्वारा अनेक भाषायें बोली जाती थी। 2011 की जनगणना के अनुसार हमारी जनसंख्या 121.02 करोड़ है। इस देश में 1652 से अधिक भाषायें बोली जाती है। जिनमें से 63 विदेशी भाषायें अथवा अन्य देशों से आयी हुयी भाषा के रूप में जानी जाती है।

संविधान निर्माताओं के लिए इनमें से किसी एक भाषा को चुनना था लेकिन वो ये भलीभाँति जानते थे कि यदि भाषा संबंधी किसी प्रकार का पक्षपात भ्रमवश हो जाये तो परिणाम भयावह हो सकते है और उनके लिए यह सौभाग्य की बात हुई कि 1652 भाषाओं को बोलने वाले समान अनुपात में नहीं थे और 18 भाषायें-असमिया, बंगला, गुजराती, हिंदी, कन्नड, कश्मीरी, फोकड़ी[1], मलयालम, मणिपुरी[2], मराठी, नेपाली[3], उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, सिंधी[4], तमिल, तेलगु, उर्दू इन्हें संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित किया था[5], बाद में इनकी संख्या बढ़ाकर आठवीं अनुसूची में 22 भाषाओं का प्रावधान कर दिया गया है।[6] इन भाषाओं का देश की जनसंख्या के 91 प्रतिशत लोग इनका प्रयोग बोलने, लिखने एवं समझने में करते है। जिसमें से हिंदी बोलने वालों की संख्या 46 प्रतिशत है। अतः संविधान निर्माताओं के लिए हिंदी को राजभाषा के रूप में चुनना निर्णयपरक बन गया। चूँकि अंग्रेज़ी का प्रयोग भारत में काफी लंबे अरसे से हो रहा था एवं भारतीय भी कुछ हद तक इसके अभ्यस्त हो चुके थे। तो यह निश्चित किया गया कि 15 वर्ष की सीमित अवधि तक इसी प्रयोजन के लिये अंग्रेज़ी के चलते रहने का उपबंध किया गया एवं यह सिफारिश किया गया कि हिंदी का विकास इस प्रकार किया जाये कि वह भारत की सामसिक संस्कृति के सभी तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसमें 8वीं अनुसूची में विर्निदिष्ट भाषाओं में प्रयुक्त अभिव्यक्तियों को आत्मसात् किया जाये।' अनुच्छेद 35

हिंदी को संघ की राजभाषा एवं संपूर्ण भारत के लिये एक केंद्रीय भाषा बनाने में एक अन्य परेशानी इसलिये भी हो सकती थी कि भारत के विभिन्न प्रदेशों में हिंदी भाषी लोगों की संख्या न के बराबर थी। इस हेतु संविधान निर्माताओं ने प्रादेशिक भाषाई समूहों की सुविधा के लिए राज्य विधान मण्डलों (अनुच्छेद 345) को हिंदी से भिन्न एक या अधिक भाषाओं को राज्यों के शासकीय व्यवहार में प्रयोग के लिये मान्यता देने की अनुज्ञा दी। यह उपबंध राज्य के विधानमण्डल के बहुमत के या राज्य की जनसंख्या के पर्याप्त अनुभाग के इस अधिकार को मान्यता देते है कि वे अपने द्वारा बोली भाषा को राज्य के भीतर शासकीय प्रयोजनों के लिये मान्यता दिलायें।

1965 तक अंग्रेज़ी को हिंदी के साथ-साथ संघ की राजभाषा के रूप मे चलना था और उसके बाद उन सभी प्रयोजनों के लिये अंग्रेज़ी का प्रयोग संसदीय विधान पर निर्भर रखा गया था। संसद ने राजभाषा अधिनियम 1963 बनाकर यह विधि अधिनियमित की है। हिंदी को संघ की राजभाषा एवं महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाये जाने के लिये राजभाषा आयोग द्वारा महत्त्वपूर्ण प्रयास एवं निर्देश दिये गये-सर्वप्रथम यह उल्लेख किया गया है कि हिंदी को राजभाषा का दर्जा देने के लिये एक योजना के भीतर उसका समायोजन किया जाये।

द्वितीय विभिन्न प्रादेशिक भाषायें राज्यों में शासकीय कार्य के माध्यम के रूप में शीघ्रता से अंग्रेज़ी का स्थान ले रही है। संघ के प्रयोजनों के लिये भारतीय भाषाओं का प्रयोग व्यवहारिक और आवश्यक हो गया है किंतु इसे परिवर्तन के लिये कठोरता से कोई समयबद्ध कार्यक्रम नहीं बनाया जा सकता। यह परिवर्तन स्वाभाविक होना चाहिये और एक अवधि में सुगमता से न्यूनतम असुविधा के बिना किया जाना चाहिये।

तृतीय, 1965 तक अंग्रेज़ी को मुख्य राजभाषा के रूप में और हिंदी को उपराजभाषा के रूप में चलाना चाहिये। 1965 के पश्चात् हिंदी संघ की प्रमुख राजभाषा के रूप में चलती

रहेगी।

चतुर्थ, संघ के किसी भी प्रयोजन के लिये अंग्रेज़ी के प्रयोग पर कोई निर्बंधन नहीं लगाया जाना चाहिये और अनुच्छेद 343 के खंड (3) के निर्बंधनों के अनुसार, 1965 के पश्चात् संसद द्वारा विनिर्दिष्ट प्रयोजनों के लिये, जब तक आवश्यक हो, तब तक अंग्रेज़ी के चलते रहने के लिये उपबंध किया जाना चाहिये।

पंचम, अनुच्छेद 351 के उपबंधों का विशेष महत्त्व है। जिसमें यह कहा गया है कि हिंदी का इस प्रकार विकास किया जाये कि वह भारत की सामाजिक संस्कृति की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसके सरल एवं सुबोध प्रयोग को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।

संसदीय समिति की सिफारिशों के अनुसरण में राष्ट्रपति ने 27/4/1960 को एक आदेश[7] निकाला जिसमें उपर्युक्त सिफारिश क्रियान्वित करने के लिये निर्देश था। इसमें वैज्ञानिक, प्रशासनिक और विधिक साहित्य के लिये हिंदी शब्दावली के विकास और प्रशासनिक प्रक्रिया संबंधी अंग्रेज़ी में उपलब्ध साहित्य के हिंदी में अनुवाद के बारे में मुख्य निर्देश थे। राजभाषा आयोग ने शब्दावली के विकास के लिये दो स्थायी आयोगों की स्थापना 1961 में की गयी और समय-समय पर इसका पुनर्गठन हुआ। विधि शब्दावली के विकास और केंद्रीय अधिनियमों के हिंदी और अन्य भाषाओं में प्राधिकृत पाठ के प्रकाशन के लिये एक आयोग का गठन किया गया जिसे राजभाषा (विधायी) आयोग नाम दिया गया था। 1976 में राजभाषा (विधायी) आयोग का उत्सादन कर दिया गया था। और इसके कृत्य भारत सरकार के विधायी विभाग को सौंप दिये गये। दूसरा अर्थात् वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग, शिक्षा मंत्रालय के अधीन काम कर रहा है।[8]

हिंदी को राजभाषा बनाये जाने के उपरोक्त निर्देशों के अतिरिक्त राजभाषा आयोग की अन्य सिफारिशों में से कुछ को राष्ट्रपति आदेश मे स्थान दिया गया है[9] जो है-

1. संघ लोक सेवा आयोग के द्वारा भर्ती के लिये परीक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी बना रहे किंतु कुछ समय पश्चात् हिंदी वैकल्पिक माध्यम के रूप में अपना ली जाये। परीक्षार्थी को विकल्प के अनुसार अंग्रेज़ी और हिंदी दोनों ही को माध्यम के रूप में अपनाने की छूट हो।

2. संसदीय विधान अंग्रेज़ी में चलता रहे, किंतु इसका प्रामाणिक हिंदी अनुवाद उपलब्ध कराया जाये। इस प्रयोजन के लिये विधि मंत्रालय को यह निर्देश दिया गया कि वह उनका अनुवाद करें और संसद द्वारा पारित अधिनियमों के पाठ के हिंदी अनुवाद को प्राधिकृत करने के लिये विधान प्रारंभ करे।

3. जहाँ राज्य के विधानमण्डल में पुनःस्थापित विधेयकों या अधिनियमों का मूल पाठ हिंदी से भिन्न किसी भाषा में है वहाँ अनुच्छेद 348 के खंड (3) के उपबंधों के अनुसार अंग्रेज़ी अनुवाद प्रकाशित किया जाये।

4. जब परिवर्तन का समय आयेगा तब उच्चतम न्यायालय की भाषा अंततः हिंदी होगी।

5. इसी प्रकार जब परिवर्तन का समय आयेगा तब सभी प्रदेशों में हिंदी सामान्यतया सभी निर्णयों, डिक्रियों या आदेशों की भाषा होगी। किंतु प्रादेशिक राजभाषाओं का राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति से हिंदी के स्थान पर वैकल्पिक रूप से उपयोग किया जाये।

संविधान में यह भी उपबंध है कि शासकीय प्रयोजनों के लिये अंतर्राज्यीय प्रत्रादि की भाषा, राज्य से अन्य राज्य के बीच एवं संघ तथा राज्यों के बीच अंग्रेज़ी होगी और यदि दो या अधिक राज्य यह करार करते है कि उन राज्यों के बीच की पत्रादि की भाषा हिंदी होगी तो वे आपसी करार के आधार पर उस भाषा का प्रयोग कर सकते है।

इसी प्रकार उच्चतम और उच्च न्यायालयों में और अधिनियमों विधेयकों आदि के लिये प्रयोग की जाने वाली भाषा के विषय में भी कहा गया है कि संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करें, तब तक उच्चतम न्यायालय और प्रत्येक उच्च न्यायालय में सभी कार्यवाहियों अंग्रेज़ी भाषा में होगी।

किसी राज्य का विधानमंडल अंग्रेज़ी से भिन्न किसी भाषा को उसके द्वारा पारित विधेयक और अधिनियमों के लिये राज्य का राज्यपाल, राष्ट्रपति की अनुमति से हिंदी या राज्य के शासकीय प्रयोजन के लिये प्रयुक्त किसी अन्य भाषा को राज्य के उच्च न्यायालय की कार्यवाहियों के लिये प्रयोग करना प्राधिकृत कर सकेगा, किंतु निर्णय, डिक्री या आदेश तब तक अंग्रेज़ी में होते रहेंगे जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबंधित न करें। (अनुच्छेद 348)

किंतु बाद में यह प्रावधान किया गया कि संविधान के इन सब पूर्वगामी उपबंधों को अब राजभाषा अधिनियम 1963 प्राकृतिक पाठ (केंद्रीय विधि) अधिनियम, 1973 और नये अनुच्छेद 394 (क) के साथ पढ़ा जाना चाहिये इस अनुच्छेद के आधार पर पूर्व के सभी अधिनियमों में हिंदी का प्रयोग भी अनिवार्य होना चाहिये।

हिंदी को संघ की राजभाषा बनाने के लिये एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रयास यह भी था कि संविधान का प्रारूप और संविधान सभा द्वारा 26 नवम्बर, 1949 को अंगीकृत संविधान अंग्रेज़ी भाषा में था। संविधान सभा के अध्यक्ष ने अपने प्राधिकार से उसका हिंदी में अनुवाद कराया था और उस पर

संविधान सभा के सदस्यों ने हस्ताक्षर किये थे। उस अनुवाद को अद्यतन करके उसमें भाषा और शैली की दृष्टि से परिशोधन करके उसे प्राधिकृत पाठ घोषित करने के लिये 58वें संशोधन अधिनियम, 1987 द्वारा अनुच्छेद 394(क) संविधान में स्थापित किया गया। इस अनुच्छेद के अनुसरण में हिंदी में संविधान का प्राधिकृत पाठ प्रकाशित किया गया है। अनुच्छेद 394(क) के खण्ड (2) के अनुसार हिंदी पाठ का वही अर्थ लगाया जाना चाहिये जो अंग्रेज़ी के मूल पाठ का है।

इसके अतिरिक्त हिंदी को राजभाषा बनाये जाने के पक्ष में अन्य भी तर्क को हम रख सकते है जैसे-भारत का राष्ट्रीय गान जन-गण-मन हिंदी भाषा में होने के साथ-साथ ही इसने भारत की आज़ादी की लड़ाई के दौरान 27 दिसम्बर, 1911 को कोलकाता के कांग्रेस अधिवेशन में गाया गया। हिंदी भाषा के माध्यम से ही इसने भारतीयों में देश प्रेम को प्रेरित करने का कार्य किया जिसे भारत आज़ाद होने के बाद 24 जनवरी, 1950 को राष्ट्रीय गान के रूप में स्वीकार किया।

राष्ट्रीय गीत जो कि संस्कृत भाषा में है, को भी सर्वप्रथम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस कोलकाता अधिवेशन 1896 में गाया गया था। संस्कृत ही हिंदी भाषा की जननी है। इसलिये भारत की सांस्कृतिक विरासत संस्कृत एवं हिंदी की ही देन है आज भी भारत के प्रमुख संस्थानों के उद्धरण वाक्य हिंदी की जननी संस्कृत में ही है जो पूर्वकाल से चले आ रहे है जैसे भारतीय गणराज्य को-सत्यमेव जयते, सर्वोच्च न्यायालय को यतः धर्मस्ततो जयः, इंडियन नेवी को शं नो वरूणः एअर फोर्स को नभः स्पृशः दीप्तम् से उद्धृत किया गया है जो आज भी चला आ रहा है। ये सारे उद्धरण हिंदी को राजभाषा होने के प्रमाण एवं साक्ष्य के रूप में सदैव उपस्थित है।

इन अवधारणाओं तथा विवेचन के आधार पर हिंदी को भारत की राजभाषा का दर्जा देने संबंधी कुछ ठोस सुझाव भी दिये जा सकते है जो इस प्रकार है-भारत एक बहुभाषी देश होते हुये भी उसकी एकता और अखण्डता को भाषायी आधार पर इसलिये खतरा नहीं हो सकता क्योंकि प्रादेशिक भाषा को कार्यालयीय प्रयोग हेतु संविधान द्वारा अधिकार दिया गया है। भारत में भाषाओं की भूमिका या पृष्ठभूमि यूरोप एवं अमेरिका से भिन्न है। इसलिये भारतीय भाषाओं में आपस में न द्वेष है न कटुता। केवल प्रतिस्पर्द्धा है तो अंग्रेज़ी से और सभी भारतीय भाषाएं यह एकजुट होकर महसूस कर रही है। क्योंकि भारत का जो वर्तमान परिदृश्य है उसकी समस्या भारत की अन्य भाषाओं के साथ विवाद का नहीं है बल्कि हिंदी भारत की राजभाषा के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती अंग्रेज़ी भाषा का है। जो कभी भी भारत की भाषा नहीं रही है लेकिन आज हर क्षेत्र में अंग्रेज़ी भाषा ने प्राधिकारपूर्ण स्थान बना लिया है और हिंदी भाषी देश में लोग भाषा की वजह से उपेक्षित हो रहे है।

संदर्भ-

1. संविधान (इकहत्तरवाँ संशोधन) अधिनियम, 1992 द्वारा (31-8-1992 से) अंतः स्थापित
2. वही
3. वही
4. संविधान में (इक्कीसवाँ संशोधन) अधिनियम, 1967 द्वारा जोड़ी गयी।
5. मूल संविधान में 14 भाषायें थी। संविधान (21वाँ संशोधन) अधिनियम, 1967 द्वारा सिंधी को जोड़े जाने पर 15 हो गयी थी। 71वें संशोधन अधिनियम, 1992 से नेपाली, मणिपुर और कोंणाकी को सम्मिलित कर लिये जाने पर 18 हो गयी।
6. बानवेवाँ संशोधन अधिनियम (2003) आठवीं अनुसूची में डोगरी, बोडो, मैथिली संथाली भाषाओं को जोड़ने से अब 22 भाषाओं को शामिल कर लिया गया है।
7. इंडिया 1961, पृ. 547।
8. भारत का संविधान एक परिचय, डॉ. डी. डी. बसु, आठवाँ संस्करण 2002, पुनः मुद्रण, 2008, बाधवां एण्ड कंपनी नयी दिल्ली, पृ. 403
9. वही, पृ. 405

प्रवक्ता-राजनीति विज्ञान, राजेंद्र प्रसाद त्रिपाठी महाविद्यालय चंदौली

विभक्त परिवार का बंटी

(मन्नू भण्डारी कृत आपका बंटी उपन्यास के सदर्भ में)

डॉ. हर्षद कुमार चौहान

स्वातंत्र्योत्तर युगीन साहित्य में सामाजिक विघटन, टूटते-बिखरते पारिवारिक संबंध और उनसे उत्पन्न पीड़ा, अपने आपको खोजने की प्रवृत्ति तथा नवीन सभ्यता में उभरती अपनी तस्वीर को स्वच्छ से स्वच्छत्तर करने के प्रयास को प्रायः हर विधा में देखा गया है। साहित्य के प्रमुख चारों अंग-कथा, काव्य, नाटक और निबंध में समय-समय पर हर तरह से नया दृष्टिकोण देखने को मिला है। जहाँ तक उपन्यास साहित्य की बात है, वह मानवीय संबंधों की एक विवृत्ति रहा है। बदलती परिस्थितियों ने मानवीय, सामाजिक तथा पारिवारिक संबंधों के प्रायः सभी समीकरणों को बदलने के प्रयास किये हैं।

आधुनिक काल की महिला उपन्यासकारों में मन्नू भण्डारी का नाम अग्रगण्य है। 'आपका बंटी' और 'महाभोज' उपन्यास बहुचर्चित हैं। 'महाभोज' में कथा का विषय जहाँ दलित-चेतना से संबंधित है वहाँ 'आपका बंटी' बिलकुल आज के टूटते सामाजिक परिवेश पर आधृत है। 'आपका बंटी' उपन्यास की भूमिका में लिखा गया है कि छठवें दशक की सबसे चर्चित कथाकार मन्नू भण्डारी, जिन्होंने जब भी लिखा हिंदी की कथा यात्रा में एक नया ही मार्ग इज़ाद कर दिया। संबंधों के दरम्यान गहरी होती हुई दरारें, अंतर्द्वंद्व से उठता हुआ सैलाब, पात्रों की क्रमशः उठती-गिरती हुई मानसिकता, कहने की सहजता, संवादों से उभरती हुई भाषा का बनावहीन बुनाव, अपने आस-पास के परिवेश से उठे हुए कथानक, लीक से हटकर आये हुए लेखन के सीधे विद्रोहात्मक पहलू-इन सब से गुज़री है उनकी कलम। मन्नू जी ने जिस समय लिखी, हिंदी का कथा साहित्य 'सब दिन चले अढ़ाई कोस' वाली मसल पर अम्ल किये हुआ था। वे जब आई, जैसे यकायक कहानी 'जम्प' कर गई और लेखन का एक नया आयाम खुला।''[1]

समकालीन साहित्य में जिस प्रकार कामकाजी महिलाओं की समस्याएँ, पारिवारिक विघटन की त्रासदी, स्त्री-पुरुष के आंतरिक संबंध आदि को नई दृष्टि से देखने की कोशिश की गई है।

समकालीन हिंदी कथा साहित्य में मन्नू भण्डारी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। यह एक सच्चाई है कि उन्होंने पुरुष प्रधान समाज में सच बोलने का साहस जुटाया है। कहना न होगा कि हमारे परंपरावादी साहित्य में महिला लेखन के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण रहा है। साहित्य की मुख्यधारा पुरुषों के वर्चस्व वाली रही है। पितृसत्तात्मक समाज में बुनियादी ढाँचा अन्याय और असमानता पर आधारित रहा है। नारी का दमन और शोषण दुनिया की सबसे पुरानी और सबसे जटिल समस्या रही है, जिसकी जड़े हमारे धर्म, संस्कृति और परंपराओं में बहुत गहरे तक धँसी हुई हैं।

जैसा कि आगे कहा गया है कि आधुनिक हिंदी साहित्य की महत्त्वपूर्ण महिला कथाकार के रूप में मन्नू भण्डारी सुप्रसिद्ध हैं। उनकी शिल्पगत नवीनता एवं कथागत विभिन्नता आरम्भ से ही पाठकों को आकर्षित करते आये हैं, साथ ही साथ आलोचकों को नए प्रतिमान की खोज में विवश करने में भी उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उनके उपन्यासों में मध्य वर्ग की विशेषता यह रही है कि वह अपने आपको आर्थिक दृष्टि से अभावग्रस्त दिखाने की अपेक्षा अपने को सफेद पोश दिखाने में, आदर्शवादी और मध्य वर्ग से कटकर उच्च वर्ग या उच्च मध्य वर्ग के साथ जुड़ जाने को आतुर रहता है।

मन्नू भण्डारी के उपन्यास-साहित्य में एक अंतरंग पहचान व्यक्त हुई है। इसके भीतर सांस्कृतिक, समाज-शास्त्रीय एवं संवेदना के स्तर पर सामाजिक परिवर्तन का माध्यम परिलक्षित है। उनके उपन्यासों में विशेषकर 'आपका बंटी', 'महाभोज', 'स्वामी', 'एक इंच मुस्कान' आदि में स्त्री-पुरुष के विविध रूपों, समाज तथा राजनीति आदि के विभिन्न आयामों के अनुशीलन के साथ-साथ बदलते हुए भारतीय समाज की चुनौतियों और कमजोरियों को प्रस्तुत करने की क्षमता व्यक्त हुई है।

भारतीय समाज के बदलते चेहरे को मन्नू भण्डारी ने अपने उपन्यासों द्वारा जीवंत बनाया है। किसी भी समाज में खासकर भारतीय समाज में युग परिवर्तन की प्रक्रिया सालों से चली आ रही है। इसलिए मन्नू भण्डारी के द्वारा प्रतिबिंबित होने वाली भावनाएँ एवं विचार लंबे समय तक महत्त्वपूर्ण बने रहेंगे ऐसा कहना गलत न होगा।

इस उपन्यास के बारे में डॉ. त्रिभुवन सिंह ने लिखा है कि ''सामाजिक विषमताओं, भ्रष्टाचारों तथा वैचारिक स्थानों से आक्रांत पीड़ित समाज की दयनीय परिस्थितियों को उसके वास्तविक रूप में समाज के सामने प्रस्तुत करना सामाजिक उपन्यासों का प्रधान लक्ष्य है।''[2]

'आपका बंटी' उपन्यास का प्रकाशन 1971 में हुआ था और यह मन्नू भण्डारी का सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास है, हिंदी का यह पहला उपन्यास है जिसमें एक विशेष परिस्थिति में पड़े हुए बच्चे की मनःस्थिति का इतने विस्तृत फलक पर चित्रांकन किया गया है। माता-पिता के अलग हो जाने पर, उनके अपने-अपने ढंग से व्यवस्थित हो जाने के बाद दोनों की संतान जिस मानसिक मनोदशा की शिकार होती है, उसे मन्नू जी ने इस उपन्यास के माध्यम से बखूबी अभिव्यक्त किया है। इस उपन्यास के लिए कमलकुमार ने अपने लेख-'समकालीन महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों का परिवेश' में 'आपका बंटी' के बारे में लिखा है-''मन्नू भण्डारी का आपका बंटी आज के अनेक परिवारों में साँस ले रहा है, अलग-अलग संदर्भों में अलग-अलग स्थितियों में अलग तरह से।''[3] और अपने बच्चे को लेकर उससे अलग रहती है। अजय के साथ रिश्ता टूट जाने से उसका एकमात्र सहारा पुत्र बंटी ही है। बंटी को पापा अजय बहुत प्यार करते हैं। शकुन का पति अजय उसके तलाक़ देने से पहले ही मीरा नामक दूसरी स्त्री से विवाह कर लेता है। शकुन भी अजय की तरह अपनी ज़िंदगी को बदलने का प्रयत्न करती है।

इस उपन्यास का केंद्र बिंदु बालक बंटी है और शकुन पृष्ठभूमि में है। शकुन के चरित्र के बारे में 'जन्मपत्री बंटी की' में मन्नू जी ने कहा है-''शकुन चक्की पीस-पीस कर बेटे का जीवन बनाने में अपने आपको स्वाहा कर देने वाली माँ नहीं थी, बल्कि स्वतंत्र व्यक्तित्व, आकाक्षाएँ और आजीविका के साधनों से तृप्त माँ थी। इस नारी और माँ से आपसी द्वंद्व का अध्ययन ही शकुन को उसका वर्तमान रूप देता है।''[4] प्रारंभ में बंटी के पास अपना घर है, अपना बगीचा है। अपनी मम्मी है, अपनी फूफी है। भले ही पापा साथ नहीं रहते, परंतु पापा का असीम प्यार उसके साथ है, उनके द्वारा दिये हुए ढेर सारे खिलौने हैं। लेकिन वह समझ नहीं पाता है कि किस तरह एक साल में उसके हाथ से एक-एक चीज़ सरकती जाती है। सारे संबंधों से गहरे जुड़ा हुआ बच्चा संबंधहीन होता चला जाता है।

वर्तमान समय में पति-पत्नी दोनों नौकरी पेशे से जुड़े हुए होते हैं, तब उन दोनों के बीच अहं का टकराव होना स्वाभाविक है, जो यहाँ पर भी दिखाई देता है। दोनों के अहंकार के कारण प्रेम पूर्ण जीवन नरक-सा बन जाता है, परिस्थिति तब अति गंभीर हो जाती है, जब बच्चे को अपने माता-पिता दोनों का प्रेम चाहिए और ऐसे समय दोनों अहंकार के कारण साथ नहीं रह पाते, नहीं मिल पाते। एक समय ऐसा आता है जब माता के प्रेम में भी ...हॉस्टल में भेज दिया जाता है तथा वहाँ अपने समवयस्क बच्चों के साथ वह अपनी तुलना करता है तथा अनेक प्रकार की मानसिक और शारीरिक वृत्तियों का शिकार भी होता है। बंटी की समस्या वर्तमान समय में संयुक्त परिवार से अलग रह रहे स्त्री-पुरुष की समस्या है। आज हर माता-पिता को समझदारी के साथ आने वाली पीढ़ियों के बारे में सोचना होगा तथा उनकी आवश्यकताओं, उनकी भावनाओं को समझना होगा। कहीं ऐसा न हो कि वह प्यार से वंचित रह जाय और आवश्यक है कि उसे समय-समय पर माता-पिता योग्य मार्गदर्शन भी मिले।

इस कहा जा सकता है कि 'आपका बंटी' की समस्या वर्तमान समय में विभक्त परिवार में रहते स्त्री-पुरुष के पारिवारिक विघटन की समस्या से संबंधित है और यह पारिवारिक विघटन आधुनिकता की देन है। हमें चाहिए कि आने वाली पीढ़ियों के बारे में एक नई सोच पैदा करें, अहं के टकराव से दूर रहकर अपने बच्चों को संपूर्ण .... उनका भविष्य-प्रासाद ऐसे संस्कारों पर खड़ा करें कि वे भी अपने माता-पिता के प्रति स्नेहभरी दृष्टि से जुड़े रहे। मन्नू भण्डारी ने जातिवाद को महत्त्व न देते हुए कर्मवाद पर बल दिया है।

संदर्भ-

1. मन्नू भण्डारी, आपका बंटी, पृ. 3
2. कमलकुमार, समकालीन साहित्य समाचार (पत्रिका), नई दिल्ली, पृ. 36
3. आपका बंटी, पृ. 37
4. डॉ. त्रिभुवन सिंह, मन्नू भण्डारी का उपन्यास साहित्य, पृ. 129

श्री भीखाभाई पटेल आर्ट्स कॉलेज, आणंद, गुजरात

शब्द का सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य

अमित कुमार शर्मा

शब्द की सैद्धाांतिक विवेचना प्रस्तुत आलेख का उद्देश्य है। अतः उसकी परिभाषाओं और प्रकृति के ऊपर तथा आधार पर निकाले निष्कर्ष बिंदुओं पर प्रकाश डाला जाएगा। शब्द का सैद्धांतिक चिंतन इस प्रकार है। सबसे पहले शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार करेगें। शब्द की व्युत्पत्ति 'शप' धातु से जोड़ा गया है-

1. कुछ विद्वान शब्द की व्युत्पत्ति 'शप' धातु से जोड़ते हैं- शप (आक्रोश)+दन्=शब्द
2. कुछ विद्वान शब्द की व्युत्पत्ति 'शब्द' धातु से जोड़ते हैं- संस्कृत शब्द+घञ=शब्द।''[1]

परिभाषाएँ

शब्द की परिभाषाएँ संस्कृत, हिंदी और अंग्रेज़ी के विद्वानों ने दी हैं। पतंजलि के अनुसार-''स्फोट शब्द। ध्वनि शब्द गुणः।'' अर्थात् शब्द स्फोट या अर्थ-बोध से बनता है। ध्वनि इसका गुण होती है।''[2]

पतंजलि ने पुनः कहा-''श्रोतोपलब्धि बुद्धि निर्ग्राहयः प्रयोगेणाभिनलिभः आकाशः देशः शब्दः।'' अर्थात् कान द्वारा प्राप्त बुद्धि से ग्राह्य, प्रयोग द्वारा स्फुरित होने वाली आकाशव्यापी ध्वनि को शब्द कहते हैं।''[3]

पतंजलि ने शब्द की दो विशेषताएँ मानी हैं-अर्थ-बोध एवं ध्वनि।

देवेंद्रनाथ शर्मा के अनुसार ''उच्चारण की दृष्टि से भाषा की लघुतम इकाई ध्वनि है और सार्थकता की दृष्टि से शब्द।''[4]

देवेंद्रनाथ शर्मा की परिभाषा पूर्ण रूप से वैज्ञानिक है। उनके अनुसार भाषा की लघुत्तम इकाईयाँ ध्वनियाँ हैं जब ये सार्थक हो तब शब्द बनता है। उन्होंने शब्द को अर्थ का लघुत्तम घटक कहकर पूरी तरह परिभाषित किया है, हालाँकि शब्द के ध्वनि पक्ष पर वह कुछ ज़्यादा स्पष्ट नहीं कर पाए हैं।

भोलानाथ तिवारी के अनुसार-शब्द अर्थ के स्तर पर भाषा की लघुत्तम इकाई है।''[5]

भोलानाथ तिवारी भी अर्थ के आधार पर भाषा की लघुत्तम इकाई के रूप में शब्द को देखते हैं। पर वे शब्द के ध्वनि पक्ष पर अपनी कोई राय नहीं दे सके हैं।

रवींद्रनाथ श्रीवास्तव के अनुसार-''भाषा की सर्जनात्मक बुनावट की आधारभूत सामग्री 'शब्द' है क्योंकि शब्द भाषा के वे पूवर्निर्मित तत्त्व हैं जिनके आधार पर बड़े भाषिक खंड जैसे पद्बंध, उपवाक्य, वाक्य आदि निर्मित होते हैं...''[6]

इस प्रकार यहाँ शब्द को भाषा की सर्जनात्मक बुनावट की आधारभूत सामग्री माना गया है, जिसके आधार पर भाषिक खंड जैसे पद्बंध, उपवाक्य और वाक्य बनते हैं। उन्होंने आगे कहा-''शब्द के दो आयाम पाते हैं पदार्थ गुण संपन्न 'कोशीय शब्द' अथवा 'शब्दिम' और 'रूप' वाक्यात्मक प्रकार्य-गुण-संयुक्त' पद।''[7] यहाँ शब्द के दो रूप किए गए हैं-पहला कि वह कोशीय रूप होता है अर्थात् वह कोशगत अर्थ देता है। दूसरा वह वाक्य में पद रूप से भूमिका निभाता है। माने व्याकरणिक प्रकार्य करता है। इसलिए उसे रूप वाक्यात्मक प्रकार्य गुण संपन्न कहा। रवींद्रनाथ श्रीवास्तव ने शब्द को लिखित और मौखिक इकाई मानकर भी परिभाषित किया है।''

भाषा की अन्य इकाईयों की भाँति शब्द भी एक भाषिक प्रतीक है जिसे दो भिन्न अभिव्यक्ति माध्यमों द्वारा अभिव्यक्त करना संभव है। कर्णेंद्रिय स्वनमिक माध्यम और चाक्षुष लेखिम माध्यम''[8] यहाँ पर शब्द को लिखित और ध्वनिगत रूप में स्वीकारा गया है। यह शब्द का संकेतनपूर्ण प्रयोग होता है। रवींद्रनाथ की परिभाषाएँ शब्द का वैज्ञानिक विवेचन करने में सफल रही हैं। इनमें शब्द की अर्थगत (कोशीय), पदगत (रूप-वाक्यात्मक) और ध्वनिगत-लिपिगत (वर्णविन्यास्यात्मक लिखित) भूमिका पर प्रकाश डाला गया है। उदाहरण देकर इस प्रकार स्पष्ट किया है-[9]

1. लड़का बोल रहा है। (एकवचन, कर्त्ताकारक)
2. लड़के बोल रहे हैं। (बहुवचन, कर्त्ताकारक)
3. लड़के को बुलाओ। (एकवचन, कर्त्ताकारक)
4. लड़कों को बुलाओ। (बहुवचन, कर्मकारक)

'लड़का', 'लड़के' और 'लड़कों' को भाषिक इकाई के भिन्न पद रूपों में पाया गया है। यही शब्द वाक्यों में प्रयोग होकर पद बन गया है। अतः यह शब्द रूप वाक्यात्मक प्रकार्य

गुण संपन्न कार्य है। 'लड़का' शब्द चारों वाक्यों में निश्चित कोशीय अर्थ देता है। इस प्रकार पदार्थ के रूप में एक भूमिका निभाता है, जो इसका कोशीय रूप है। रवींद्रनाथ ने शब्द को सर्जनात्मक बुनावट की आधारभूत सामग्री भी कहा जिसके आधार पर बड़े-बड़े भाषिक खंड जैसे पदबंध और उपवाक्य आदि बनते हैं।

इसी तरह इंटिबंसल ने भी शब्द को परिभाषित किया है। उनके अनुसार-''शब्द भाव और विचार की स्वायत्त इकाई है। यह अर्थों के समूह, निश्चित व्याकरणिक प्रयोग का परिणाम होता है या ध्वनियों का समूह होता है जिनका निश्चित अर्थ होता है, जिन्हें परंपरा से स्वीकृति मिलती है या विचार की छोटी इकाई है जिसे बोलकर प्रकट किया जा सकता है।''[11] इंटिबंसल ने शब्द को व्याकरण, ध्वनि, अर्थ और विचार के केंद्र में रखकर परिभाषित किया है। शब्द के बारे में उनका मानना सही है कि यह भाव और विचार कि स्वायत्त इकाई होता है, विचार का लघुत्तम घटक है, परंपरा से स्वीकृत ध्वनियों का सार्थक रूप है और यह अर्थ के समूह और निश्चित व्याकरणिक प्रयोग का परिणाम होता है। शब्द की परिभाषाओं के निष्कर्ष इस प्रकार हैं-

1. अर्थ बोध की दृष्टि से भाषा की लघुत्तम इकाई शब्द है। ध्वनि इसका गुण होता है।

2. भाषा की लघुत्तम इकाई ध्वनि है। ध्वनियाँ सार्थक रूप से प्रयोग होने पर शब्द बन जाती हैं। यह अर्थ की लघुत्तम इकाई होता है।

3. शब्द भाषा के सृर्जनात्मक बुनावट की आधारभूत सामग्री होते हैं। ये भाषा के पूवर्निर्मित तत्त्व होते हैं जो पदबंध, वाक्य और उपवाक्य आदि के निर्माण के लिए योगदान देते हैं।

4. शब्द दो प्रकार की भूमिका निभाता है-कोशीय माने जब शब्द को कोश खोलकर अर्थ जाना जाए तो यह उसकी कोशीय भूमिका है और दूसरी रूप वाक्यात्मक प्रकार्य गुण संपन्न। इस भूमिका में शब्द व्याकरणिक इकाई के रूप में भूमिका निभाता है।

5. शब्द को लिखित या मौखिक इकाई के रूप में प्रकट कर सकते हैं।

6. यह भाव और विचार की इकाई होता है, अर्थों और व्याकरणिक प्रयोग का परिणाम होता है, निश्चित सार्थक ध्वनियों का परिणाम होता है और जिन्हें परंपरा से स्वीकृति मिलती है तथा यह विचार की सबसे छोटी इकाई होता है जिसे बोलकर प्रकट किया जा सकता है।

संदर्भ-

1. त्रिकांऽकोश 1/6/1, उद्धृत नरेश मिश्र, हिंदी शब्द समूह का विकास-सन् 1900-1925, नटराज पब्लिशिंग हाउस, करनाल हरियाणा, 1985, पृ. 6
2. पतंजलि, उद्धृत, वही, पृ. 6
3. वही पृ. 6
4. शर्मा, देवेंद्रनाथ, उद्धृत, वही, पृ. 9
5. तिवारी, भोलानाथ, उद्धृत, वही, पृ. 9
6. श्रीवास्तव, रवींद्रनाथ, भाषा-विज्ञान सैद्धांतिक चिंतन, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2004, पृ. 95
7. वही, पृ. 96
8. वही, पृ. 106
9. वही, पृ. 96
10. इंटिबंसल, उद्धृत, नरेश मिश्र, हिंदी शब्द-समूह का विकासः सन् 1900-1925,नटराज पब्लिशिंग हाउस, करनाल, हरियाणा, 1985, पृ.10

पी. जी. टी. हिंदी, जे. एन. वी., उधमपुर

वाङ्मय बुक्स, अलीगढ़ 09044918670

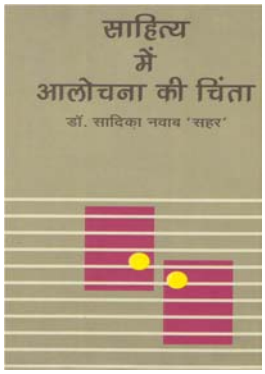

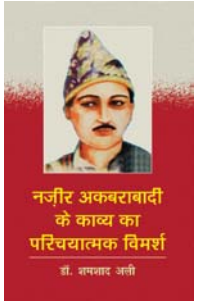

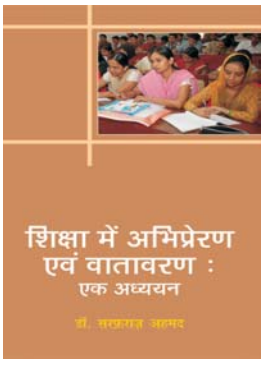

रामदरश मिश्र का कृतित्व : एक अध्ययन

कैलाशकुमार गढ़वी

रामदरश मिश्र ने लगभग 5 दशकों से हिंदी साहित्य की लगातार सेवा कर रहे है। इन्होंने हिंदी साहित्य को अपने नये-नये विचारों से लाभान्वित किया है। अपनी अंतर्मुखी दृढ़ प्रतिभा के कारण वे मत-मतांतर या विविध वादों में न पड़कर अपनी अलग राह पर चले हैं। फलतः उनका साहित्य किसी युगबोध का प्रचारक न रहकर सर्वकालीन रहा है। उनकी पैनी दृष्टि शहरी और ग्रामीण जीवन की छोटी-बड़ी सभी समस्याओं पर की और उनका विस्तार कहानी, कविता, उपन्यास के रूप में हुआ। मिश्रजी का रचना संसार व्यापक रहा है। वे हृदय से कवि, मन से कहानीकार और दृष्टि से उपन्यासकार रहे हैं। परिणामस्वरूप शैली काव्यात्मक रही है।

मिश्रजी ने जो साहित्य रचा है उनमें कहीं पर भी असत्यता एवं कृत्रिमता अनुभूत नहीं होती। वे जो भी लिखते हैं, अनुभूत सत्य को लिखते है। अतः पाठक इसे विश्वनीयता के साथ पढ़कर आनंदित होता है। उनका रचना संसार इस प्रकार है-

काव्य-संग्रह

1. पथ के गीत, 1951, 2. बेरंग बेनाम चिट्ठियाँ, 1962, 3. पक गई है धूप, 1966, 4. कंधे पर सूरज, 1977, 5. एक नदी बन गया, 1984, 6. मेरे प्रिय गीत, 1985, 7. बाज़ार को निकलते हैं लोग (गज़ल), 1986, 8. जुलूस कहाँ जा रहा है?, 1989, 9. रामदरश मिश्र की प्रतिनिधि कविताएँ, 1990, 10. आग कुछ नहीं बोलती, 1992, 11. शब्द सेतु, 1994, 12. बारिश में भीगते बच्चे, 1996 एवं 13. ऐसे में फिर कभी, 1999।

उक्त शीर्षक के अंतर्गत मिश्रजी का काव्य-संसार संकलित है। प्रारंभ की कविताओं में प्रकृति के विषय को अपनाकर अनुभव संसार के साथ जोड़ दिया है। 'पथ के गीत' में वे अपनी प्रिय ऋतु पावस के साथ भावविभोर होते है। वहीं 'बेरंग बेगाम चिट्ठियाँ' में शरद और बसंत के वर्णन अधिक है। 'कंधे पर सूरज' की कई कविताओं में प्रकृति को सिर्फ बिंब के तौर पर ही लिया गया है। इनमें आज़ादी के पश्चात् की छटपटाहट को बखूबी प्रस्तुत किया गया है। देश की बिगड़ी हुई हालत, जिसमें आदमी आज़ाद होकर भी आज़ादी के लिए छटपटाता हुए दिखाया है-

''हवाएँ...हवाएँ...हवाएँ
आँसू गैस-सी हवाएँ भर गयी है
और हर आदमी स्वतंत्र होकर भी
स्वतंत्र होने के लिए छटपटा रहा है।''

वेदप्रकाश अमिताभ ने मिश्र जी के काव्य विषय को स्पष्ट करते हुए लिखा है- 'व्यवस्था विसंगति, मानवीय नियति से जुड़े हुए जो मुद्दे मिश्रजी की कविता में बार-बार उठते हैं, उनमें वर्ग-वैषम्य, बुद्धिजनित हिंसा, अपनी जमीन से कटकर आयातित बोध की ओर झुकाव, अंग्रेजियत और राजनीतिक गिरावट मुख्य है।''[1]

'दिन नहीं बन गया' में जनविरोधी स्वरूप को प्रस्तुत किया है। न्याय, समानता आदि सिर्फ शब्द बनकर रह गये हैं, आम जनता से वे बहुत दूर चले गये है जिसका प्रस्तुतीकरण इस काव्य-संग्रह का मुख्य विषय रहा है। 'जूलूस कहाँ जा रहा हैं' के अंतर्गत शोषक वर्ग के प्रति करूणा व्यक्त हुई है।

'आग कुछ नहीं बोलती' तथा 'बारिश में भीगते बच्चे' में जो काव्य संग्रहित है उनमें एक अपरिचित 'भय' अथवा 'डर' को उभारा है। जिनमें जन साधारण के असुरक्षित होने की भाँति का उल्लेख है।

''समय एक कफ्यूँ/एक ठहरा हुआ आतंकित सन्नाटा/हर घर एक मकबरा बन गया है/जीवित शब्दों का/भय से सर्द चेहरे/चेहरों से छिपते हैं/अपने में डूबी आँखें/बार-बार खोजती हैं कोई झरोखा/अंदर की दीवारें और छतें''[2] (आग कुछ नहीं बोलती)

ये ग़ज़ले शीर्षक की भूमिका में उनका कथन है- 'ये ग़ज़ले शास्त्रीय दृष्टि से कैसी हैं, यह तो ग़ज़ल-शास्त्री ही जानें, किंतु मुझे विश्वास है कि कविता के पाठकों को इनमें कविता ज़रूर मिलेगी। मुझे इनके द्वारा अपने अनुभवों को व्यक्त करने में एक अलग तरह की तृप्ति मिली है। मेरी तृप्ति यदि पाठकों की तृप्ति बन सकेगी तो अधिक सार्थक होगी।'

आज़ादी, देश की चिंता, घर, डर, ऋतुएँ आदि के विभिन्न बिंब मिश्र की ग़ज़लों में चार चाँद लगा देते है।

उपन्यास

1. पानी के प्राचीर, 1961, 2. जल टूटता हुआ, 1969, 3. बीच का समय, 1970, 4. सूखता हुआ तालाब, 1972, 5. अपने लोग, 1976, 6. रात के सफर, 1976, 7. आकाश की छत, 1979, 8. आदिम राग (बीच का समय), 1982, 9. बिना दरवाजे का मकान, 1984, 10. दूसरा घर, 1986, 11. थकी हुई सुबह, 1994, 12. बीस बसर, 1996।

रामदरश मिश्र की हर विद्या जीवन से जुड़ी लगती है। उनके सभी उपन्यासों में सामान्य जन के जीवन की उथल-पुथल एवं मनोव्यथाओं को चित्रण पाया जाता है गाँव और शहर की दूरी को उन्होंने स्वयं भोगा है। अतः उनका हूबहू चित्रण उपन्यास के विशाल फलक पर हुआ है। 'पानी के प्राचीर', 'जल टूटता हुआ', 'सूखता हुआ तालाब' आदि में मुख्य रूप से गाँव के यथार्थ का चित्रण ही हुआ है। गाँव की जमीन से कट जाने की पीड़ा, रूढ़िवादिता से मुक्त होने की छटपटाहट, शहर में शहरी बनकर न जुड़ पाने की निराशा आदि का अद्‌भुत एवं वास्तविक चित्रण उपन्यास को अधिक मार्मिक बनाता है। गाँव की मधुर एवं कटु स्मृतियाँ व्यक्ति को शहरी बनने से रोकती है। जिनका सुंदर चित्रण मिश्र के उपन्यासों में प्राप्त है।

'रात का सफर' उपन्यास नारी जीवन के एक अलग ही पहलू को उभारता है। उपन्यास की ऋतु गाँव के निच्छल वातावरण में पत्नी विवाह के बंधन में बंध ससुराल पहुँचती है। जहाँ उसके सभी स्वप्नों को बिखेर दिया जाता है। इसमें लेखक ने एक स्त्री की मनोव्यथा को बखूबी उभारा है।

'अपने लोग' का नायक प्रमोद जिसने गाँव की ज़िंदगी से रस ग्रहण किया है। अतः शहर में रहकर भी गाँव से अछूता नहीं रह पाता। इस उपन्यास में कस्बाई ज़िंदगी की विभिन्न परतों को खोला गया है, जहाँ कटु राजनीति, स्वार्थपरता, धन एवं प्रतिष्ठा की भूख, शोषण, गला काटने की प्रतिस्पर्धा, सामाजिक क्रूरता आदि सामने आये हैं।

'आकाश की छत' का नायक यश दिल्ली शहर की बाढ़ में फँसा हुआ है। वह छत पर अकेला होकर भी अकेला नहीं है। आकाश की छत के नीचे बैठा हुआ अकेला यश अपने गाँव की एक पूर्ण दुविधा मन में उभारे हुए है। महावीर सिंह चौहान ने इस संबंध में लिखा है-'ये दिल्ली की बाढ़ तो एक युक्ति के रूप में प्रायोजित स्थिति भर है, वह एक ऐसा बहाना है जिसके सहारे यश अपने गाँव पहुँच जाता है। उपन्यास की शहरी जीवन की विडंबना के भी एक दो कोण उभरे हैं लेकिन जैसे उनके साथ उलझना लेखकीय चिंता का विषय नहीं है। लेखक की दृष्टि और संवेदना के केंद्र में गाँव ही है।''[3]

'रात का सफर' की तरह 'बिना दरवाज़े का मकान' एवं 'थकी हुई सुबह' भी मुख्यतः नारी के संघर्ष की कहानी कहते हैं। 'बिना दरवाज़े का मकान' की नायिका मुख्य रूप से 'भूख' नामक शत्रु से लड़ रही है। पेट, संतान एवं सुरक्षा की भूख उसे क्रमशः प्रताड़ित करती है।

बिहार के छोटे से गाँव से जीविकोपार्जन हेतु अहमदाबाद में आये हुए लोगों की मनोवेदना 'दूसरा घर' में चित्रित है।

'झूठ' बेईमानी और प्रपंच की मुखर भर्त्सना, शोषण और अत्याचार का विरोध वर्ग संघर्ष का आह्‌वान, दलितजन की पक्षधरता, रूढ़ि, जड़ता, अंधविश्वास से असहमति, परिवर्तनकामी शक्तियों का समर्थन-रामदरश मिश्र के उपन्यासों में व्यक्त मूल्य चिंतन के प्रमुख पक्ष है।''[4]

कहानी-संग्रह

1. खाली घर, 1968, 2. अपने लिए, 1972, 3. दिनचर्या, 1982, 4. सर्पदंश, 1982, 5. बसंत का एक दिन, 1982, 6. इक्कसठ कहानियाँ, 1984, 7. एक वह, 1974, 8. मेरी प्रिय कहानियाँ, 1990, 9. चर्चित कहानियाँ, 1992, 10. श्रेष्ठ आँचलिक कहानियाँ, 1994, 11. आज का दिन भी, 1996, 12. एक कहानी लगातार, 1998, 13. फिर कब आयेगें? 1994।

रामदरश मिश्र की छोटी-छोटी कहानियाँ को पढ़ना एक पूरे अनुभव संसार से गुज़रने वाली बात है। उनकी कहानियाँ में शोषित एवं उपेक्षित वर्ग के प्रति संवेदना व्यक्त हुई है। हर पात्र कहीं न कहीं आर्थिक रूप से प्रताड़ित है। भारत की अर्थ नीति की मार निम्न वर्ग एवं मध्य वर्ग को सहनी पड़ती है, आधे से ज्यादा कहानियों के नायक इसी स्थिति को भोगते है। कहीं-कहीं शहरी एवं ग्रामीण वातावरण के भेद को, पात्र की मनोदशा के साथ उभारा गया हैं। मिश्रजी की कहानियों में एक तरफ जहाँ अपने समाज, परिवेश, अपने लोग, अपनी मिट्‌टी की मोहक सुगंध का आलेखन है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक समस्याओं के चित्रण में भी वे सतर्क रहे है। सांप्रदायिकता, दंगे, जातिवाद आदि समस्याओं की ओर भी उनका ध्यान गया है।

मिश्रजी ने अपने परिवार एवं उनके आसपास के व्यक्ति तथा वातावरण का बड़ी सहजता से चित्रण किया है। माँ, बड़े भाई, पत्नी, पुत्र, पुत्री, प्रपौत्र आदि को लेकर घटित छोटी-सी घटना, कहानी के आकार में ढाली गयी है।

'बनते-बिगड़ते संबंधों, आर्थिक आधारों पर जुड़ते टूटते परिवार, स्वार्थों का खेल, राजनीति का अपराधीकरण आदि का

जितना सघन चित्रण उनकी कहानियों में मिलता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। इन कहानियों में एक चिरपरिचित में संसार है, हाड़ मांस के सजीव लोग है।"[5]

समीक्षात्मक कृतियाँ

1. हिंदी आलोचना का इतिहास, 1960, 2. साहित्य संदर्भ और मूल्य, 1961, 3. ऐतिहासिक उपन्यासकारः वृंदावनलाल वर्मा, 1964, 4. हिंदी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा, 1968, 5. आज का हिंदी साहित्य : संवेदना और दृष्टि, 1975, 6. हिंदी समीक्षा : स्वरूप और संदर्भ 1974, 7. हिंदी कहानी : अंतरंग पहचान, 1977, 8. हिंदी कहानी : आधुनिक आयाम, 1978, 9. छायावाद की रचना-लोक, 1981, 10. आधुनिक हिंदी कविता : सर्जनात्मक संदर्भ 1981, 11. हिंदी गद्य साहित्य : सर्जनात्मक आयाम, 1994।

मिश्र ने आलोचना के क्षेत्र में भी अपनी लेखनी से कुछ नये दृष्टिकोण प्रदान किये है। अनकहा एवं अनदेखा, कुछ छूटा हुआ था उसे संजोकर एक नये पहलू से देखने का उन्होंने प्रयास किया है। रामदरश मिश्र का हिंदी आलोचना पर महत्त्वपूर्ण शोधकार्य है और छायावाद से लेकर समकालीन कविता पर उन्होंने अपने आलेखों और आलोचनात्मक कृतियों में विचार किया है। वे एक सार्थक कवि के रूप में जाने-माने जाते हैं। अतः 'काव्य' को लेकर उनके मंतव्यों और मूल्यांकनों की अपनी एक अहमियत है। .... व्यावहारिक समीक्षाएँ सर्वत्र गंभीर काव्य-विवेक से साक्षात् होता हैं।"[6]

ललित निबंध

1. कितने बजे है, 1982, 2. बबूल और कैक्टस, 1998।

रामदरश मिश्र मानव संवेदनाओं के लेखक है। अतः उनके निबंधों में भी यह प्रभाव देखा जा सकता है। वे बिल्कुल सामान्य बातों से निबंध का प्रारंभ कर उसे एक निश्चित सार्थक दिशा पर ले जाकर समाप्त करते हैं। उनके निबंधों में अभिरुचियाँ, नापसंदगी, जीवन-संघर्ष, रचना-प्रक्रिया आदि का सफ़ल अंकन दिखाई देता है।

यात्रा वर्णन

1. तना हुआ इंद्रधनुष, 1989, 2. भोर का सपना, 1993, 3. पड़ोस की खुशबू, 1999।

'तना हुआ इंद्रधनुष' में उन्होंने उत्तरी कोरिया की यात्रा का वर्णन किया है। चीन और रूस के कुछ शहरों के विकास एवं परिवर्तन स्थितियों का चित्रण किया है।

'भोर का सपना' मिश्र की कोरिया विदेश यात्रा का वृत्तांत है। कोरियाई शिष्य के आमंत्रण पर वे अपनी पत्नी के साथ यात्रा पर गये थे। इस संबंध में दूतावास पर व्यंग्य, पारिवारिक खुशियाँ एवं स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का वास्तविक वर्णन है।

तीसरा यात्रा वर्णन 'पड़ोस की खुशबू' है। जो देश यात्रा एवं विदेश यात्रा दोनों पर आलेखित है। इन निबंधों में लेखक की मानवीय दृष्टि सर्वत्र एकता की खोज करती है और उसे लगता है कि मूलभूत मनुष्यता के कारण अनेक देश, प्रदेश, शहर, गाँव एक दूसरे के पड़ौसी है और उनसे प्यार की खुशबू फूट रही है। इन यात्रा संस्मरणों में प्रारंभ से लेकर अंत तक बाहर और भीतर के, अनुभव और विचार के मुद्दों पर निरंतर संवाद चलते रहते हैं। कहने का तात्पर्य कि यह यात्रा-वर्णन हिंदी साहित्य में अपनी अलग पहचान बनाये हुए है।

आत्म कथाएँ

1. जहाँ मैं खड़ा हूँ, 1984, 2. रोशनी की पगडंडियाँ, 3. टूटते बनते दिन, 1999, 4. उत्तर पथ, 1999, 5. सहचर है समय, 1991, 6. फ़ुरसत के दिन, 2000।

मिश्र ने अपने जीवन की विभिन्न स्मृतियों को आत्मकथा के उक्त शीर्षक के भीतर आलेखित किया है। बचपन से लेकर प्रौढ़ावस्था तक की जीवन-यात्रा को मिश्रजी ने शब्दों के माध्यम से उक्त कृतियों में साकार रूप दिया है। 'जहाँ मैं खड़ा हूँ' के अंतर्गत अपने बचपन से लेकर किशोरावस्था तक की विभिन्न घटनाओं का वर्णन किया गया है। जिनमें परिवार के सदस्य एवं ग्रामीण परिवेश का विशाल परिप्रेक्ष्य में आलेखन हुआ है। 'रोशनी की पगडंडियाँ' में अपने किशोर जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का लेखा-जोखा प्रस्तुत हुआ है। वे अपने साहित्य सर्जकों को उन्होंने याद किया है। मिश्र ने अपने दांपत्य जीवन, व्यवसायिक संघर्ष, मकान के लिए संघर्ष, गुजरात में अध्यापन कार्य के दौरान प्राप्त हुए विभिन्न अनुभवों का आलेखन 'टूटते बनते दिन' में प्रस्तुत किया है। शिक्षा के क्षेत्र में प्रविष्ट राजनीति के कारण गुजरात छोड़कर दिल्ली की यात्रा का भावात्मक आलेखन हुआ है। 'उत्तर पथ' में गुजरात विदा से लेकर दिल्ली में स्थायी होने का वृत्तांत है। साथ-साथ दिल्ली की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ, विभिन्न सम्मेलन, स्वयं का साहित्य सृजन, विभिन्न साहित्यकारों से भेट तथा राजनीति के महत्त्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन किया गया है। 'सहचर है समय' में मिश्र ने अपने जीवन की अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है। अपनी शिक्षा-दीक्षा की हर उन घटनाओं का वर्णन किया है जो उनके जीवन को ऊँचाई प्रदान कर गई। इन कृतियों को पढ़कर यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि मिश्र

का ज्यादातर कथा साहित्य उनके जीवन का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है। 'फुरसत के पल' में सेवा-निवृत्ति के बाद फुरसत के दिनों में वे जहाँ-जहाँ गये उनके अनुभवों को रोचक ढंग से आलेखित किया है। इस आत्मकथा में लेखक ने राजकोट (गुजरात) की यात्रा का वर्णन किया है। मिश्र के अन्य साहित्य की भाँति आत्मकथा में भी दिखावटी या बनावटीपन नहीं, बल्कि स्वाभाविक एवं सरलता ही दिखाई देती है।

संस्मरण

स्मृतियों के छंद (1995)

मिश्र की स्मृतियों में जिनके नाम अविस्मरणीय है, उन व्यक्तियों का आलेखन 'स्मृतियों के छंद' में आलेखित है। इसमें जहाँ एक ओर बड़े-बड़े साहित्यकार जैसे हजारी प्रसाद द्विवेदी, उमांशकर जोशी, भवानी प्रसाद मिश्र, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, जैनेंद्र कुमार, ठाकुर प्रसाद सिंह आदि है, तो दूसरी ओर उनके जीवन वृक्ष को हराभरा करने वाले बिकाऊ पंडित, मदनेशजी, रामगोपाल शुक्ल, विद्याधर आदि के चित्रण है।

चुनी हुई रचनाएँ

बूंद-बूंद नदी (1994)

रामदरश मिश्र के समग्र रचना संसार को देखकर यह अवश्य कहा जा सकता है कि उनमें अनुभूति की गहनता एवं अभिव्यक्ति की निच्छलता है। वे निहायत ही सरल एवं सीधे रूप में अपने विचारों को पाठकों के सामने रखते है। हाँ, एक बात अवश्य है कि वे इतनी साहित्यिक विधाओं को समृद्ध करने के पश्चात् भी कविता या काव्य को सिरमौर ही रखते है। 'कहने की जरूरत नहीं कि उनके उपन्यासों और कहानियों में जहाँ गंवई, कस्बाई तथा महानगरीय जीवनाभुवों की व्यापक उपस्थिति मिलती है, वहीं उनकी कविताओं में समकालीन कविता की कलावादी भंगिमाओं और श्लिष्ट शाब्दिक उपस्थापनाओं से अलग एक सादा संसार किंतु उनकी संरचना में प्रतीकात्मकता और भावात्मक प्रतिक्रियाओं का एक सघन स्थापत्य दिखाई पड़ता है। दशकों से दिल्ली जैसे महानगर में रह रहे उनके रचनाकार को आज भी न तो गाँव भूला हैं और न वे ही गाँव को भुला सके हैं। उनकी रचनाएँ सच पूछिए तो शहर और गाँव के अंदरूनी हालात और जीवनानुभवों के अंतर्द्वंद्व से भीगी है, क्योंकि उनके नागरिक मन के भीतर गाँव आज भी बचा हुआ है।''[7]

संदर्भ-

1. वेदप्रकाश अमिताभ, रामदरश मिश्र : रचना समय, पृ. 22
2. वही, पृ. 33
3. महावीर सिंह चौहान, रामदरश मिश्र की सृजन यात्रा, पृ. 63
4. रामदरश मिश्र, रचना समय, पृ. 47
5. डॉ. जगत सिंह, डॉ. स्मिता मिश्र, रामदरश मिश्र : व्यक्ति और अभिव्यक्ति, पृ. 195
6. रचना समय, पृ. 80
7. रामदरश मिश्र, व्यक्ति और अभिव्यक्ति, पृ. 35

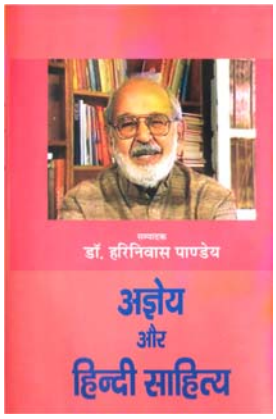

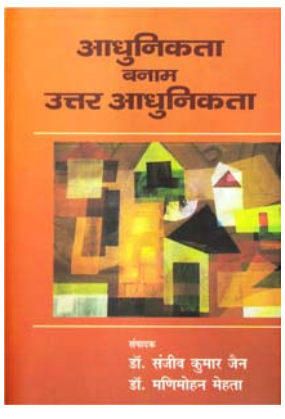

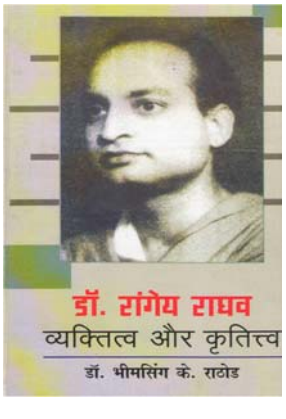

केशव प्रसाद मिश्र कृत क्या रोशनी मौत है उपन्यास का विश्लेषण

राजेश यादव

'क्या रोशनी मौत है' उपन्यास के प्रमुख पुरुष पामत्र के रूप में अनुपम है इनका नाम है-पंकज । वह देहाती लड़का है किन्तु नाम उसका शहरी है। पंकज का स्कूल का नाम अनुपमचन्द्र था विभा का अपनी सखी से यह कथन कि यह मेरे मामा का लड़का है-पंकज सतीशचन्द्र कॉलेज में 9वें दर्जे में पढ़ता है। गोपाल अनुपम को राजू और यार कहकर सम्बोधित करता है। अनुपम प्रिया के बचपन का पंकज है। अनुपम के यहाँ फोटो देखकर प्रिया अनुपम को पहचान लेती है और गोपाल से कहती है- ''ये मेरी सखी के मामा के लड़के हैं -चार पाँच घरो की दूरी पर अपने फूफा के यहाँ रहते थे। 9वें दर्जे से 11वें दर्जे तक पढ़े। हम लोगों का एक दूसरे के यहाँ आना जाना था पर इनका नाम पंकज था। बारह साल बाद उस दिन घाट पर देखा तो कुछ सन्देह हुआ। बारह सालों में भर गई देह और चेहरा-मोहरा- मैं पहचान न सकी और ये अबतक अपने को छिपा ले गये। पाँवों की शक्ल भर याद थी - लेकिन उसके भरोसे कितना दावा करती।''[1]

अनुपम रूपवान व मनमोहक है। बचपन में ही उसके माता-पिता चल बसे थे उसका बचपन दुःख और अकेलेपन से भरा रहा था। जब पंकज सौ रुपये की पुस्तकें खरीद कर लाता है तब उनके फूफा अपनी पत्नी से कहते है- ''मैं तो उड़ने वाली चिड़िया के पर पहचानता हूँ विभा की अम्मा ! तुम्हारे भाई का बेटा है। प्रिया के यह पूछने पर पंकज को गाना-वाना आता है विभा कहती है फुटबाल हॉकी खेलने के बाद खर्र-खर्र नाक बजाते हुए सोना और पढ़ लेना आता है लेकिन इम्तिहान में हमेशा पहला यानी फर्स्ट क्लास।'' प्रेमा से प्यार करते हुए भी वह अपनी पढ़ाई को नहीं भूलता। अनुपम इलाहाबाद में विजिलेन्स विभाग में इन्सपेक्टर की नौकरी करता है दो साल पहले इसकी पत्नी का देहान्त हो चुका है। एक लड़की थी जो तीन-चार महीने पहले मर गयी दोबारा शादी नहीं की। प्रिया के पूछने पर अनुपम कहता है-''यू कहिए, मेरे भाग्य में शायद ब्याह नाम की लकीर है ही नहीं।''[2] पंकज को प्रेमा से प्यार है। जन्म दिन पर पंकज ने प्रेमा को लड्डू खिलाया था तो उसने कहा था कि आज तो मैं तर गयी और तभी प्रेमा ने मेरी बॉह खींचकर मुझे बगल में दाहिनी ओर सटा के बिठा लिया। मैं ऊपर से नीचे तक सिहर गया और जब तक बैठा रहा, प्रेमा बराबर मुझे सटाकर बैठी रही। किसी लड़की का ऐसा स्पर्श और उसकी देह पर की नये कपड़ों की गन्ध पहली बार मिली थी। मेरी देह में रह-रह के भीतर से अजीब-सा होने लगता था, जो भीतर ही भीतर बहुत अच्छा लग रहा था।

प्रेमा से जन्म दिन पर मिलने के दिन मेरे मन पर प्रेमा की रूप की छाप पड़ी थी, उसको देखने की उत्सुकता मेरे मन में शुरू हो गयी स्कूल जाते समय प्रेमा के घर की ओर ताकता था शायद वह दिख जाय। प्रेमा से पहली मुलाकात-स्पर्श को भूल न पाने के कारण स्वप्न दोष हुआ था ।

प्रिया के पति अनुपम के मन मे अपार आकर्षण व प्यार है अतः प्रिया उससे कहती है- आप बार-बार मुझे देखने लगते है। पेट में दर्द होने की स्थिति को लेकर प्रिया के अनुपम से कहे गये इस कथन- ''जिस देह मे आज आप कोई कमी नहीं पा रहे है, कल रात उसी देह का कोई अंश बाकी न होगा जिसे आपने देखा न हो, छुआ न हो, आप की आँखें भी वही थी, लेकिन आप एकदम खामोश रहे, नदी के तीर पर खड़े एकदम तटस्थ.... में उसे खुला निमन्त्रण है। तब अनुपम का यह कथन कि....कल आप की देह में वह कहा था, जो आज है? कल तो आपकी देह ठंडी होने की कगार पर थी । ठंडे गोश्त मे स्पन्दन नहीं होता और जहाँ स्पन्दन न हो, वहाँ पुरुष नहीं जागता, जंगल का पशु जाग सकता है। उसके सच्चे प्यार का द्योतक है। प्रिया को सोते हुए देखने पर अनुपम का मन करता है -ललाट, मुँह और माथे को सहलाऊँ। लेकिन जप्त कर गया। प्रिया की सेहत की अनुपम को बड़ी चिन्ता है प्रिया ही अनुपम के बचपन की प्रेमी थी। प्रेमा के रूप में निखार आने पर पंकज एहसास करता है, प्रेमा के घर आना जाना बढ़ गया था। हमारे सम्बन्ध में दिन-प्रतिदिन बढ़ते जा रहे थे, घने होते जा रहे थे क्योंकि प्रेमा का साहचर्य मेरे मन को ताज़गी और स्फूर्ति देता जा रहा था। काशी से आये डेढ़ मास बाद दिपावाली की छुट्टियों में काशी घूम आने का अनुपम का मन होता है, लेकिन वह नहीं जाता है किन्तु प्रिया का पत्र पढ़ने के बाद काशी जाने

को वह तुरन्त तैयार हो जाता है। प्रिया गोपाल के इलाहाबाद आने पर अनुपम का यह कथन कि- ''मन हुआ था, प्रिया को बाँहों में बाँध लूँ। घर के भीतर होता या रात होती तो शायद मर्यादा टूट जाती या गलती हो भी जाती.... ढंग से उसके कन्धे पर हाथ रख .....उसके प्रिया के प्रति गहरे प्रेम को अभिव्यक्त करता है।''

अनुपम ही पंकज है, जानने पर गोपाल का कथन- ''.....प्रिया के लिए तुम्हारें मन में इतनी गहराई न होती, तो मेरे जैसे नारकीय आदमी के घर तुम्हारे जैसे मर्द दूसरी बार नहीं जाता। जिस रात प्रिया जी बीमार हो गयी थीं, उसकी विधिवत् कथा मैंने बाद में इन्हीं के मुँह से सुनकर जाना कि तुमने किस तरह उन्हें मौत के मुँह से निकाला और लक्ष्मण-रेखा के भीतर कैद कर पहरा भी देने लगे।'' अनुपम का प्यार पाकर ही तो प्रिया उसे कहती है-''आँखों में तिनका पड़ जाने से थोड़ी देर को सामने का पहाड़ भले आँखों से ओझल हो जाये, सागर की उत्ताल तरंगे भले ही सागर को थोड़ी देर ढक ले, किन्तु न तो पहाड़ अपनी जगह से हिला है और न सागर ही लहरों से मिट पाया है, वही सागर तुम हो पंकज।''[4]

इस प्रकार अनुपम तो प्रिया के लिए प्यार का सागर है। प्रिया के प्रति अनन्य प्यार होने पर भी अनुपम के मन में विरोधी-भाव जागृत होते रहते हैं। अनुपम का जीवन अकेलापन से भरा हुआ है। कम बोलने की प्रिया की शिकायत पर वह कहता है-''अकेला आदमी बोले कितना?'' अनुपम का गोपाल-प्रिया से कथन-''अकेला आदमी हूँ-रमता जोगी, बहता पानी। आज यहाँ, कल वहाँ। प्रिया-गोपाल के इलाहाबाद आने पर अनुपम के मकान को देख गोपाल का कहना....''और इतने बड़े मकान में महज एक आदमी! दिल भला लगे तो कैसे? भी अनुपम के अकेलेपन का सूचक है। अनुपम में स्पष्टवादिता है। प्रिया-गोपाल के आतिथ्य पर प्रिया से वह कहता है- ''मैं समझता हूँ प्रिया जी, कि आज से पहले आपसे मेरी कहीं देखा-देखी भी नहीं हुई है। गोपाल से भी मिले हुए इतने साल गुज़र गये कि पीछे का सभी कुछ भूल-बिसर गया था। इतने लम्बे अन्तराल में जाने क्या-से-क्या हो गया हैं। इसलिए ये सब कुछ नया ही मानना चाहिए। आप लोगों ने मेरे यहाँ आकर चाय पी, लेकिन इसके आगे मेरे जैसे व्यक्ति को, जिसका ठौर-ठिकाना मालूम नहीं अपने घर में रखने के लिए विश्वास कर लेना, आप जैसी महिला के लिए एकदम अव्यावहारिक है।''[5]

अनुपम संवेदनशील है। वाराणसी वापस जाने पर प्रिया की दशा को याद कर उसका यह सोचना- ''स्वाभाविक अधिकारों से वंचित, कैंसर होने के भय से ग्रस्त, ज़िन्दगी से संघर्ष करती हुई इस औरत के प्रति मन में बेहद करुणा भर आयी थी।'' उसकी संवेदनशीलता का सुन्दर उदाहरण है। अनुपम के इलाहाबाद जाने के लिए निकलने पर प्रिया उदास हो जाती है और उसकी पलकें भारी और नम हो जाती हैं। इसे देखने पर अनुपम का यह कहना कि-''मैं अपने इस कमजोर मन को क्या कहूँ?'' अनुपम के यहाँ इलाहाबाद जाने के बाद प्रिया में एक परिवर्तन दिखता है। जन्मभूमि की याद भी उसे रह-रहकर आने लगती है। अकेलेपन की पीड़ा के बारे में गोपाल का कहना 'दूसरा ब्याह न करने का फल भोग रहा हूँ।'' अनुपम मान-मर्यादा वाला व्यावहारिक पुरुष है। अनुपम को समाज की चिंता है। गोपाल के यह कहने पर कि प्रिया को अपने साथ ले जाने में तुम्हें क्या हर्ज है? अनुपम का यह कथा-''जब शंका और प्रश्न भरी आँखों से देखने-पूछने लगेंगे कि मैं यह कैसी औरत ले आया तो मैं किस-किसको समझाता फिरूँगा कि भाईयों, यह सुन्दर औरत मैं कही से भगाकर नहीं लाया हूँ। यह मेरे दोस्त की बीबी है जो इलाज के लिए आई है। अनुपम कि मर्यादा और सामाजिकता ही वह गुण है जिसके कारण प्रिया अनुपम को ''धर्म परम्परा वाले आदमी'' कहती है। अनुपम स्वाभिमानी व्यक्ति है। प्रेमा के फोटो के लिए जब जेब-खर्च का उपयोग करने पर बुआ के यह कहने पर कि-''जेब खर्च क्या तुम्हारे बाप के कमाई के थे?''[6]

वह अपने को अपमानित महसूस करता है और बुआ का घर छोड़कर नानी जी के पास चला जाता है। फूफा जी के लिवाने के लिये आने पर वह उनसे नहीं मिलता और उस घर से हमेशा के लिए रिश्ता तोड़ देता है। विभा द्वारा यह पूछने पर कि-''अब क्या घर नहीं आओगे?'' उसका यह कहना- ''जिस घर में इतना अपमान हुआ उस घर में फिर जाने की हिम्मत नहीं होती। विभा दो साल की ज़िन्दगी याद आने पर लालच तो लगती है, लेकिन मन नहीं करता। अब किस मुँह से जाऊँ तुम लोगों के संग-साथ, अन्न-जल इतने ही दिनों के लिये बदा था। उसके स्वाभिमान का परिचायक है। अनुपम में स्वाभिमान के साथ नम्रता भी है। पंकज की समझदारी, बड़प्पन तब दिखाती है जब वह प्रेमा के फोटो देखकर कहता- ''लेकिन तुम्हारा ब्याह तो उससे होना चाहिए जो तुमसे भी खूबसूरत हो। ''डॉक्टर के यह कहने पर कि प्रिया को कैंसर नहीं है। प्रिया द्वारा अनुपम को कहना कि यह सब तुम्हारे ही कारण हो सका है। तब अनुपम का यह कथन- ''मैं समर्थ होता तो तुम्हारा आँचल खुशियों से भर देता प्रिया, लेकिन मैं क्या हूँ यह मैं जानता हूँ में भी अनुपम की उदारता व नम्रता झलकती है। उसे किताबें पढ़ने का शौक है। गोपाल के कमरे की 'संभोग से समाधि की ओर' पुस्तक देखकर पूछने पर गोपाल का कथन मेरे पास बहुत

काम है। उससे फुर्सत नहीं, तो किताबें पढ़ूँगा-ये जब प्रिया जी की दुनिया हैं। जब बाज़ार जायेंगी, एक-दो किताबें ज़रूर लायेंगी। तब अनुपम के यह पूछने पर कि -''आज तो कुछ नहीं खरीदा।'' तो गोपाल का कथन-कि आज तो तुम्हीं आ गए किताबों के बापू-आशा निराशा के झूले में झूलते अनुपम की ज़िन्दगी में एक मोड़ आता है। जो उसके जीवन की दशा ही बदल देता है। उसका मन निर्मल है प्रिया का बलात्कार हुआ था जानकारी भी गोपाल के आत्महत्या के बाद उसे स्वीकार लेता है और इस पंकज प्रेमा का फिर से मिलन होता है। इस प्रकार पंकज उर्फ अनुपम ... जिसकी कथा बलिया से शुरू होकर वाराणसी में खत्म होती है। .... पंकज आशा निराशा के बीच झूलता हुआ फिर से खिल उठता है। अनुपम पूरी तरह से उपन्यास में आदर्शवादी दृष्टिकोण अपनाता है।''[7]

गोपाल 'क्या रोशनी मौत है' उपन्यास का एक प्रमुख पात्र है और नायिका रसप्रिया का नपुंसक पति है। अनपम भी प्रिया से कहता है- समाज और धर्म दोनों की नज़रों में आपका परमेश्वर है तथा अनुपम का मित्र है। कॉलेज के दिनों मे टीम से खेलता था, अनुपम से एक साल पीछे था और अब काशी के बड़े स्टेशन में पार्सल कर्लक मलदहिया मुहल्ले में रहता है गोपाल डॉक्टर को जनखा लगता है। उसकी आवाज़ जनानी है। बिना मूँछ-दाढ़ी वाले आदमी अपनी खूबसूरती के कारण मनोहर ने अनुपम के लिए चाकू चलाया था। अनुपम का डॉक्टर से ये कथन इसका प्रमाण है- ''पढ़ाई के दिनों में तो ये और भी खूबसूरत थे कॉलेज में इनकी खूबसूरती के कारण चाकू चल गया था।'' अनुपम भी प्रिया से कहता है- ''कमाने वाला खूबसूरत पति है।'' गोपाल की सुरीली आवाज़ और बोलने का अन्दाज दोनों गज़ब के है। गोपाल अपने बारे में अनुपम को पत्र लिखता है- ''मां-बाप ने इण्टर तक पढ़ाया और नौकरी दिला दी। उसके बाद व्याह मैंने अपने मन से किया। माँ-बाप रहे ही नहीं तो अपना ब्याह भी मुझे अपने ही करना पढ़ा, जो एकदम गलत था जबकि मैं एक नपुसंक आदमी हूँ- पुरुषत्व से हीन औरत के लिए अयोग्य, सन्तानोपत्ति के लिए सर्वथा असमर्थ शरीर के उस अंग से रहित। तब मैंने ब्याह क्यों किया मेरा काम गलत था, अन्यथा मुझे ब्याह कतई नहीं करना चाहिए। लेकिन अपनी झूठी सामाजिक मर्यादा रक्षा-भाव और थोड़े से पैसे के अहंकार में मैंने प्रिया जैसी लड़की से खिलवाड़ किया। इससे भी स्पष्ट है कि वह नपुंसक है और उसको स्वीकार्य करता है। प्रिया भी कभी व्यंग्य में गोपाल की नपुंसकता की ओर इशारा करते हुए कहती है कि जैसे गोपाल के यह कहने पर कि- ''मर्दों की छोटी-छोटी हरकतों पर औरतों को प्रायः अचरज होता है।'' प्रिया कहती है कि- ''तुम्हारी किसी भी हरकत पर मुझे अचरज नहीं होता।''

डॉक्टर इलाहाबाद में जब गोपाल के सीमेन की जांच के लिए कहते है तब गोपाल जांच कराने से मना कर देता है। तब प्रिया भी अनुपम से कहती है-''मैं जानती हूँ कि इस काम के लिए वे इलाहाबाद कतई नहीं जायेगे।''[8]

गोपाल ने दूसरे मर्दों द्वारा प्रिया पर बलात्कार भी करवाया था। फिर भी प्रिया ने अपनी सीमा नहीं लांघी थी। अतः गोपाल पत्र में अनुपम को लिखता है-''एक नार्मद पति की पत्नी, जो व्याह के पांच साल से आज तक भूखी-प्यासी तड़पती आयी है, मन लायक मर्द पाकर भी उसके आगे अपनी इन परिस्थितियों का ज़िक्र तक न करे, यह अपने में इतन बड़ी बात है।'' प्रिया जी इतने नज़रों में इतना ऊँचा उठ गयी है कि मैं अपने को और हेय समझने लगा हूँ। वह दो तरह की ज़िन्दगी नहीं जीना चाहता और इस प्रकार प्रिया -अनुपम का मिलन हो इसलिए आत्महत्या कर लेती है। इस प्रकार गोपाल नामर्द ज़रूर है किन्तु सकुंचित नहीं। वह पूरी तरह से उदात्त है, जो अन्त में स्पष्ट हो जाता है। पार्सल गुम हो जाने के कारण उत्पन्न स्थिति से निराश गोपाल अनुपम से पत्र में-''अब यह निश्चित हो गया कि मैं पकड़ा जाऊँगा नौकरी से मुअत्तल हो जाऊँगा। मेरी दुर्गती होगी। समझ में नहीं आता आगे क्या होना है। मैं तो हर ओर से अपने को घिरा पाता हूँ। नहीं जानता, मैं प्रिया से मांफी मांगने का भी हकदार हूँ या नहीं? प्रिया जी और कानून, किसी का भी सामना करने की शक्ति अब मुझमें नहीं रही। लिखकर अपनी सत्यता सिद्ध करता हूँ और आत्महत्या करते समय कागज़ पर लिखता जाहा है कि -''मेरी मौत की जिम्मेदारी किसी पर नहीं है उसके लिए मैं खुद जिम्मेदार हूँ।''[9]

एक बार अनुपम गोपाल से शादी की बात को लेकर कहता है कि-''ब्याह करके तुमने ही कौन-सा तीर मार दिया?'' किन्तु आत्महत्या द्वारा वह प्रिया और अनुपम का मार्ग प्रशस्त करता है। इस प्रकार गोपाल शरीर से नार्मद ज़रूर था किन्तु भयावह मानसिक संघर्ष को झेलती प्रिया को एक मर्द के हाथों में देकर, अपना जीवन समाप्त कर, अपनी ज़िन्दगी का मतलब और उद्देश्य सिद्ध कर जाता है।

सन्दर्भ-

1. केशव प्रसाद मिश्र, क्या रोशनी मौत है, पृ. 23
2. वही, पृ. 29
3. वही, पृ. 32
4. वही, पृ. 38
5. वही, पृ. 40
6. वही, पृ. 43
7. वही, पृ. 48
8. वही, पृ. 52
9. वही, पृ. 56

शोध-छात्र (हिन्दी विभाग), जवाहर लाल नेहरू स्मारक पी.जी. कॉलेज, महराजगंज (उ.प्र)

बाज़ारीकरण–भूमण्डलीकरण का जाल : स्त्री विमर्श

संगम वर्मा

स्त्रियों के सन्दर्भ में मीडिया की भूमिका पर विचार करने के पूर्व मीडिया की जन्नत की हक़ीकत को देख लेना आवश्यक जान पड़ता है। एल.पी.जी. (उदारीकरण, निजीकरण और भूमण्डलीकरण) के दौर की जब शुरूआत हुई तो कई तरह की आशंकाएँ व्यक्त की गयीं कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया प्रिंट मीडिया को निगल जाएगा। अब इनके दिन लद गये। पर ऐसा कुछ नहीं हुआ, बल्कि दोनों साथ-साथ एक-दूसरे से आगे-पीछे होते हुए, एक-दूसरे के लिए ख़बरें प्रकाशित कराते हुए चले ही जा रहे हैं। अख़बारों के नये संस्करण दिनोंदिन बढ़ रहे हैं, तो इलेक्ट्रॉनिक चैनलों की संख्या भी निरन्तर बढ़ रही है, लेकिन मीडिया कहीं न कहीं अपने मूल दायित्व से भटक गया है।

बहरहाल, मीडिया की ताकत खूब बढ़ रही है, पर उसकी यह ताकत बाज़ार के हवाले हो चुकी है। बाज़ार का प्रभाव ये है कि खुलापन बढ़ा है और जैसा हम जानते हैं, यह खुलापन स्त्रियों के मामले में ही ज्यादा लागू होता है। बाज़ारवाद और उदारवाद के बाद दुनिया एक-दूसरे के करीब हुई और स्त्रियाँ इसके उत्पाद के 'प्रोमोटर' के रूप में ही पहचान बना पाई है। 'प्रोमोटर' की यह भूमिका स्त्री-देह के अधिकाधिक दर्शन पर आधारित हो गया है। मीडिया द्वारा स्त्री की जो छवि पेश की जा रही है, वह (विज्ञापनों में) उत्पाद-प्रोमोटर के अलावा टेलीविजन चैनलों द्वारा दिखाये जा रहे सीरियलों में षड्यन्त्रकारी और कुल्टा की ही ज्यादा नज़र आती है। मीडिया और स्त्री के मुद्दे पर जब हम विचार करते है, तो तीन बिन्दु प्रमुख रूप से उभरते हैं। पहला विज्ञापनों द्वारा निर्मित स्त्री-छवि, दूसरा टी.वी. धारावाहिकों के माध्यम से पेश की जा रही स्त्रियों की छवि और उनकी भूमिका तथा तीसरा बिन्दु है-मीडिया में काम कर रही महिलाओं की स्थिति। तीनों ही बिन्दुओं पर स्त्रियों की जो स्थिति है, वह सन्तुष्ट करने के बजाय कोफ्त ज्यादा पैदा करती है।

स्त्री को ज़रूरत-बेज़रूरत हर विज्ञापन में परोसकर उत्पादों की बिक्री की गारण्टी की जा रही है। पुरुष मानसिकता यहाँ पूरी तरह हावी है। कथाकार चित्रा मुद्गल की यह टिप्पणी इस लिहाज से प्रासंगकि है- ''विज्ञापन-सुन्दरियों की चकाचौंध दरअसल बाज़ार द्वारा स्त्री-दिमाग का धकियाने और उसकी देह पर कब्जा जमाने की ही युक्ति है। भले ही कुछ उत्तर आधुनिक चिन्तक इसे खुलापन और स्त्री की आज़ादी का नाम दें, पर इस बिक रही स्त्री का खरीददार कौन है? पुरुष ही न! पहले खरीदने के लिए दूर जाना पड़ता था, आज वह सर्वसुलभ है। देह से मुक्ति के मायने देह-ग्रस्त होना हो गया है। पहले नाभिदर्शना साड़ी होती थी, अब जींस और बाकी पहनावे भी हो गये हैं। देह पर अतिरिक्त जोर का आलम यह है कि शिक्षालय तक में रैम्प और फैशन परेड का विस्तार हो गया है।'' (बया, 2006, पृ. 29)

इन बातों को आगे कर दरअसल औरतों के मूलभूत मुद्दों-शिक्षा, स्वास्थ्य एवं अन्य सुविधाओं को दरकिनार कर दिया जाता है। इसका सबसे दुखद पहलू ये है कि इन मुद्दों को किनारे करके स्त्री-स्वातंत्र्य के बने-बनाये फार्मूले को आगे कर दिया जा रहा है। यह सब कुछ बाज़ार के व्यापक प्रसार के फलस्वरूप ही हो रहा है। पुनः चित्रा मुद्गल को ही उद्धृत करें- 'बाज़ारीकरण के दौर में स्त्री-स्वातंत्र्य की ये परिभाषाएँ पुरुष की ललक, कामभावना आदि को संतुष्ट करने के नुस्खे भर है। इसके कारण स्त्री-स्वातंत्र्य की बात आज खतरे में दिखाई देती है। सिनेमा, टी.वी. से लेकर इसका विस्तार 'हैलो दिल्ली' जैसे अख़बारी परिशिष्टों तक हो गयी है। इन सबके मूल में सिर्फ बिकने वाली है। स्त्री के वस्तुकरण की इस प्रक्रिया पर नकेल कसना ही आज स्त्री की सबसे बड़ी चुनौती है।'' (वही, पृ. 30)

स्त्रियों की सामाजिक स्थिति पर नज़र डालें तो अब भी सन्तोषजनक कह पाना कठिन है। दहेज-हत्या, बलात्कार, डाइन के नाम पर हत्या जैसी घटनाएँ आये दिन होती रहती हैं। स्त्री-पुरुष अनुपात दिनोंदिन चिन्ता की लकीरों को गाढ़ा कर रहा है। सामान्य वर्ग की महिलाओं की दशा भी अपेक्षानुरूप नहीं सुधरी है। दलित एवं आदिवासी स्त्रियों की स्थिति तो अब तक चिन्ताजनक बनी हुई है। कहें, तो कई मायने में ये सब आदिम अवस्था की प्रवृत्तियों को झेल रही हैं। इन स्त्रियों को लेकर समाज में जो ब्राह्मणवादी अवधारणा को ही ज्यादातर मामलों में अभिव्यक्ति देता है, कई भ्रांतियाँ फैली हुई हैं।

उदाहरणस्वरूप ये स्त्रियाँ, गैर-दलितों, गैर-आदिवासी स्त्रियों की अपेक्षा ज्यादा स्वतन्त्र हैं। वे बेधड़क कमाने बाहर जा रही हैं, वे अपने निर्णय लेने में सक्षम् होती हैं। यह बात कुछ हद तक सच भी है, पर ये स्त्रियाँ कमाने अपने शौक वे स्वतन्त्रता के कारण नहीं बल्कि मजबूरी से जाती हैं। भयंकर गरीबी के कारण दलित आदिवासी परिवारों में छोटे बच्चों से लेकर औरत मर्द हर एक को कमाना पड़ता है। यहाँ यदि देखने योग्य बात है तो वह यह ये कि क्या कमाऊ दलित-आदिवासी स्त्री द्वारा कमाये गये धन पर अपना वास्तविक अधिकार है भी या नहीं? यहाँ कटु सत्य ये है कि उनकी हाड़तोड़ मेहनत की कमाई उनके पति छीन लेते हैं। यह अलग बात है कि बाहर काम करने की मजबूरी अन्ततः उन्हें मजबूती भी देती है। सच पूछें तो दलित-आदिवासी परिवारों में स्त्रियों की स्थिति बँधुआ मजदूरों से ज्यादा नहीं है। इनके बीच साक्षरता का स्तर अत्यन्त निम्न है। इस वर्ग की खासकर दलित महिलाओं को कई स्तरों पर शोषण का शिकार होना पड़ता है। पहला जाति के कारण, दूसरा स्त्री होने के कारण उनका जीवन बदहाली, अभाव व शोषण, अत्याचार की चक्की में पीसा जाता है।

मीडिया की मनोरंजनकारी भूमिका भी है। मनोरंजन के बहाने भी यह कई गुल खिला रहा है। अख़बारों के आखिरी पन्ने सबरंग, रासरंग की घोषणाओं के साथ ग्लैमरस अभिनेत्रियों की अर्द्धनग्न तस्वीरों से भरे होते हैं, तो सेलिब्रेटीज के लिए कोई भी पन्ना और स्पेस सुरक्षित है। बाज़ारीकरण और भूमण्डलीकरण के दौर में मीडिया का मनोरंजन पक्ष बेहद आक्रामक और विखण्डनकारी है। इण्टरटेनमेंट चैनलों पर दिखाये जाने वाले प्रायः सभी हिन्दी धारावाहिकों- 'क्योंकि सास भी कभी बहू थी', 'कहानी घर-घर की', 'कसौटी ज़िंदगी की', 'सात फेरे', 'ससुराल', 'सिन्दूर', 'कुमकुम-प्यारा-सा बंधन' आदि की कहानियों के ताना-बाना परस्पर विघटन, अविश्वास, परिवार के टूटने, विवाहेत्तर सम्बन्ध, समूह के मुकाबले व्यक्ति की प्राथमिकता, षड्यन्त्र-दर-षड्यन्त्र, अतिशय उपभोग के इर्द-गिर्द बुना जाता है। इन धारावाहिकों में थोड़ा-बहुत फर्क सिर्फ डिग्रियों को लेकर रहता है, लेकिन एक-दूसरे धारावाहिकों को देखें तो सबमें अद्भुत समानता भी दिख जाएगी। हर धारावाहिक में प्रमुख पात्र का मरना, उसका पुनर्जीवन प्राप्त करना, स्मरण शक्ति खोना, फिर स्मृति का वापस आना जैसे स्थायी भाव हो गये हैं। वस्तुतः इन बाज़ारवादी शक्तियों के लिए परिवार की अवधारणा जितनी सिमटेगी, परिवार जितने छोटे होंगे- उपभोक्तवादी संस्कृति का व्यापक प्रसार भी उसी अनुपात में होगा। यों पूंजीवाद का पहला और आखिरी लक्ष्य अधिकतम लाभ अर्जित करना है। इस लक्ष्य की उच्चतम उपलब्धि सूक्ष्म पारिवारिक इकाईयों के अस्तित्व में आने पर ही होनी है। बाज़ार के लिए पारिवारिक विघटन उपभोक्ता सामग्रियों की खपत का ज्यादा स्कोप उपलब्ध कराता है। सामूहिक व संयुक्त परिवारों के टूटने पर ही लोगों के उपभोग के अपने-अपने ढंग विकसित हो पाएँगे। इन्हीं को ध्यान में रखकर इण्टरटेनमेंट चैनलों के सीरियल भव्यता और उपभोग का ऐसा संसार गढ़ते हैं, जिनमें भावुक दर्शक वर्ग (ज्यादातर महिलाएँ) डूबता चला जाता है। यहाँ यह भी ध्यान देने लायक है कि पिछड़े, अल्पविकसित और विकासशील देशों के निम्न व मध्यवर्गीय दर्शक अमूमन भावुक, सहज विश्वासी, अतार्किक, संवेदनशील और प्रतिक्रियात्मक होते हैं। इसी वजह से देखा यह जाता है कि सामान्यता हिन्दी धारावाहिकों में भक्ति की बेतरतीब और बेतुकी धारा प्रवाहित होती है। हर सीरियल में एक बड़ा मकान होता है, उसमें तीन-तीन, चार-चार पीढ़ियाँ एक साथ रहती हैं और बुजर्गवार अपना सिर धुनते रहते हैं। इनकी एक खासियत यह भी होती है कि तमाम षड्यन्त्रों को अंजाम देने में स्त्री पात्र ही सर्वाधिक क्रियाशील भूमिका निभाते हैं। शायद ही कोई ऐसा पात्र मिलता है, जिसके विवाहेत्तर सम्बन्ध न हों। ये सम्बन्ध आजीवन नासूर की तरह धारावाहिकों के पात्रों को अपनी जद में लिये रहते हैं। हाँ, इन सबके बीच एक भव्य मन्दिर भी इन विशाल भवनों में होता है, जहाँ अक्सर धार्मिक आयोजन होते हैं। तीर्थ-स्थलों की यात्राओं से लेकर चादरपोशी तक के धार्मिक क्रियाकलाप सम्पन्न होते रहते हैं। धारावाहिकों के पात्रों को राम, कृष्ण, सीता, पार्वती जैसे मिथकीय पौराणिक चरित्रों के समकक्ष खड़ा करने की भौंड़ी कोशिश से भी इनके निर्माता-निर्देशक बाज नहीं आते। दर्शकों की धार्मिक भावनाओं को दुहने में सीरियल निर्माता कोई कोर-कसर नहीं छोड़ते। प्रख्यात पत्रकार और मीडिया विश्लेषक रामशरण जोशी के शब्दों में, ''वे (सीरियल निर्माता-निर्देशक) मनोरंजन उद्योग के नियन्त्रक दर्शकों के इस चरित्र से गहराई तक परिचित होते हैं। अतः इस प्रक्रिया में वे परम्परागत संस्थाओं, आस्थाओं, मूल्यों, निष्टागत रिश्तों पर जमकर प्रहार करते हैं। व्यक्तिनिष्ठ व सूक्ष्मगत जीवन शैली के मूल्यों को आरोपित किया जाता है। ग्राहक की उपचेतना में वस्तुओं को उतारा जाता है। कथानक और विज्ञापन के जरिये उपभोग का आवेगी वातावरण तैयार किया जाता है। जाहिर है इस क्रम में स्थिति विकृत से विकृततर होती चली जाती है।'' (हंस, जनवरी, 2007, पृ. 132)

आज की मीडिया पुराने मिथों को तोड़कर नये मिथ गढ़ रहा है। इण्टरटेनमेंट चैनल इस गति में अपनी भूमिका बढ़-चढ़कर

शेष भाग पृ. 58 पर.....

समकालीन परिप्रेक्ष्य में हिंदी का वैज्ञानिक साहित्य सृजन

डॉ. के. आशा

साहित्य ज्ञान और संवेदना की प्रवाहमान धारा हैं। इसका विकास अनेक दिशाओं से होता चला आ रहा है। विज्ञान एवं प्रौद्यागोगीकी का प्रभाव जिस तरह से आम जीवन पर हावी हो रहा है उसे जन साधारण के बीच पहुँचाने के लिए राजभाषा हिंदी में 'विज्ञान लेखन' सशक्त माध्यम है। पूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय पी. वी. नरसिंहाराव 'भाषा और प्रौद्योगिकी पुस्तक के प्राक्कथन में लिखा है-विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विदेशी भाषा से कोई राष्ट्र न तो मौलिक ढंग से विकास कर सकता है न तो अपनी विशिष्ट वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी पहचान बना सकता है। विदेशी भाषा से अनुवाद की बैसाखी का सहारा भी अधिक समय तक नहीं लिया जा सकता हैं।

विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के विभिन्न पक्षों के विषय में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए मानव उत्सुक है। परंतु उन विषयों के संबंध में जानने और समझने के लिए उन्हीं की भाषा में बताने की चेष्टा किया जाए। डॉ. राय अवधेश श्रीवास्तव की पुस्तक 'लोक विज्ञान तथा कथा साहित्य' के प्राक्कथन में सुप्रसिद्ध हिंदी साहित्यकार कमलेश्वर ने लिखा है-'विज्ञान के क्षेत्र में सबसे बड़ी समस्या भाषा माध्यम की है। उच्च शिक्षा के माध्यम में परिवर्तन न होने के कारण अभी भी विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की पहुँच बहुसंख्यक समाज तक नहीं हो पाई है। व्यक्तिगत तथा सरकारी प्रयासों से वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली की समस्या कुछ हद तक सुलझ गई है। जिसके सहारे आज जान की हर विधा में सार्थक अभिव्यक्ति सहज रूप से संभव है।'

इक्कीसवीं सदी में विज्ञान लेखन और इसकी प्रौद्योगिकी में जो प्रगति हुई वह विशेष उल्लेखनीय है। आधुनिक विज्ञान में अनगिनत प्रकार की परिकल्पनाएं है, जिन्हें साहित्यकार वैज्ञानिक मुद्दों का चयन कर अपनी कल्पना शक्ति के अत्यंत सूक्ष्म रंगों को चढ़ाकर काल्पनिक जगत का सृष्टि करता है तथा साहित्यकार भविष्य की एक ऐसी झांकी प्रस्तुत करता है जो अनहोनी का पूर्वाभास करते हुए हमें किसी आने वाले खतरों के प्रति सचेत करता है।

हिंदी साहित्य में विज्ञान कथा का पदार्पण गद्य साहित्य से प्रारंभ हुई। पहली हिंदी विज्ञान कथा-ऐयारी और तिलस्मी उपन्यासों के जनक देवकी नंदन खत्री 'चंद्रकांता' (1892) में प्रकट हुई उसी काल में 'आश्चर्य वृत्तांत' के रेचता अंबिका दत्त व्यास (1884-88) के विज्ञान गल्प लेखन की नयी सरणी निर्मित हुई।

अंबिका दत्त व्यास ने संपादित पत्रिका 'पीयूष-प्रवाह' में 'आश्चर्य वृत्तांत' को धारावाहिक रूप में प्रकाशित (1884) किया। यह हिंदी का प्रथम विज्ञान गल्प है जो अपने समय की एक अनूठी सृजन थी। आगे, साहित्यिक पत्रिका 'सरस्वती' ने वर्ष 1900 में विज्ञान कहानियों को प्रकाशित करना आरंभ किया। जिसमें दो कहानियाँ एक साथ प्रकाशित हुई-किशोरी लाल गोस्वामी की 'इंदुमती' और केशव प्रसाद सिंह की 'चंद्रलोक की यात्रा'। 'चंद्रलोक की यात्रा' आंगल-आधृत रूप में लिखी गई और 'इंदुमती' आधुनिक हिंदी शैली में लिखी गई प्रथम कहानी है। यद्यपि हिंदी में यह विमर्श आज भी जारी है कि हिंदी की पहली आधुनिक कहानी कौन सी है...इंदुमति? इंशा अल्ला खां की 1803 में प्रकाशित 'रानी केतकी की कहानी'? या फिर 1870 में प्रकाशित मेरठ में पं. गौरी दत्त कृत 'देवरानी जेठानी की कहानी' यह चर्चा प्रासंगिक एक वक्त था जब एच. जी. वल्स, जूल्स वर्न, एडगर एलन पो जैसे साहित्यकारों ने अपने वैज्ञानिक साहित्य द्वारा न केवल यूरोप और अमेरिका बल्कि संपूर्ण विश्व पर अपनी लेखनी का जादू छोड़ा था। फलतः उन कहानियों को पढ़कर किशोरों में वैज्ञानिक बनने का निश्चय किया और आगे चलकर देश की तरक्की में भागीदार बने। आज भी विज्ञान कथाओं पर आधारित जुरासिक पार्क, स्टार वार्स, क्रिश जैसी फिल्मों का नाम बच्चे-बूढ़ों की जबान पर है।

अपने भारत देश में हिंदी में विज्ञान लेखकों की कमी नहीं है अपितु विज्ञान कथाओं के प्रति समकालीन साहित्यकारों की जैसे एक अरुचि-सी बनी हुई है। हिंदी में विज्ञान लेखकों का एक विशाल दल अवश्य है जैसे आचार्य चतुरसेन शास्त्री, डॉ. संपूर्णानंद, राहुल सांकृत्यायन जैसे महान् साहित्यकारों ने मौलिक विज्ञान कथाएं एवं उपन्यास लिखकर इस ओर

साहित्यकारों का ध्यान आकर्षित किया था। इसका प्रभाव आगामी साहित्य पर पड़ना निश्चय था। यद्यपि आज यह विधा भारत में उपेक्षित-सी रही है।

भारत में वैज्ञानिक जागरूकता उत्पन्न करने में विज्ञान कथाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इस विधा के ज़रिए आम जन मानस में वैज्ञानिक जागरूकता पैदा की जा सकती है तथा एक शक्तिशाली साधन के रूप में इसे विकसित करते हुए संपूर्ण विश्व में विज्ञानमय वातावरण का निर्माण कर सकता है। यह भविष्य की वैज्ञानिक प्रगति की झलक भी दिखाएगी और समाज में पड़ने वाले प्रभावों का पूर्वालोकन भी। बस जरूरत है भाषा की जिसे योजनाबद्ध ढंग से विकसित करें।

हिंदी हमारे देश की संपर्क भाषा है। जब तक हिंदी भाषा को प्रयोजनमूलक नहीं बनाया जाएगा। तब तक हिंदी में विज्ञान लेखन अपनी सार्थकता सिद्ध करने में असफल रहेगा। वैज्ञानिक एवं तकनीकी परिभाषिक शब्दावली का हिंदी में अभाव नहीं है। परंतु विज्ञान लेखक इसका उपयोग नहीं कर रहे हैं इसका कारण वैज्ञानिक पुस्तकों की भाषा का मानवीकरण नहीं हो रहा है और तमाम नए शब्द गढ़ रहे है। हिंदी विज्ञान कथा लेखन के आवश्यक तत्त्व हैं-भाषा पर अधिकार, विज्ञान का ज्ञान, सार्थक, कल्पना शक्ति और उसे रोचकतापूर्वक अभिव्यक्त करने की क्षमता। इन्हीं तत्त्वों के आधार पर विज्ञान कथा परिलक्षित होती है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारत की बढ़ती प्रगति, इंटरनेट, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक जर्नल्स, पुस्तकों का प्रभाव से हमारे नज़रिए और हमारे सोच पर हिंदी विज्ञान लेखन का दिशा तय करेंगी।

देश में विज्ञान कथा लेखन प्रकाशन के उन्नयन के हेतु भारतीय विज्ञान कथा लेखक समिति का गठन फैज़ाबाद (उ. प्र.) में किया गया। समिति ने डॉ. राजीव रंजन उपाध्याय और डॉ. अरविंद मिश्र के संपादन में देश की विज्ञान कथाओं को समर्पित पहली पत्रिका 'विज्ञान कथा' आरंभ की है। वेल्लोर में इंडियन एसोसिएशन फॉर साइंस फिक्शन स्टडीज की स्थापना की गई है और हिंदी में विज्ञान कथाओं के विकास में इंटरनेट के द्वारा विज्ञान कथाओं पर ब्लॉग्स और एक ई-ग्रुप भी चलाया जा रहा है, जिसकी पहल विज्ञान कथा लेखन डॉ. अरविंद मिश्र ने की है। हाल ही में एयर वाइस मार्शल विश्व मोहन तिवारी के संपादन में 'कल्पिआन' नामक ई-विज्ञान कथा पत्रिका का हिंदी और अंग्रेज़ी में प्रारंभ की गई है। हिंदी भाषा में विज्ञान को लोकप्रिय बनाने की दिशा में यह निःसंदेह महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा।

उपरोक्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आज भी हमारे पास विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की अपनी भाषा नहीं है। यदि विज्ञान को साहित्य और आम जनमानस से जोड़ना है तो हमें भारतीय भाषाओं की और विशेष रूप से राजभाषा हिंदी की महत्ता को समझना पड़ेगा जो विज्ञान को साहित्य से, साहित्य को आम जनमानस से जोड़ने का एक सशक्त माध्यम भी हैं।

संदर्भ-

1. www.hindi. kalkion.cm
2. www.hi.wikipedia.org

काविडा विला, मल्लापुझास्सेरी, आरमुला, पत्तनंतिट्टा केरल-689533

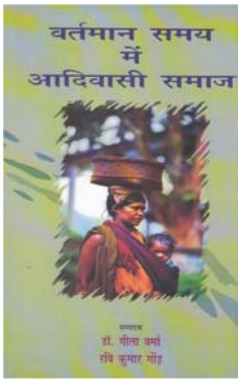

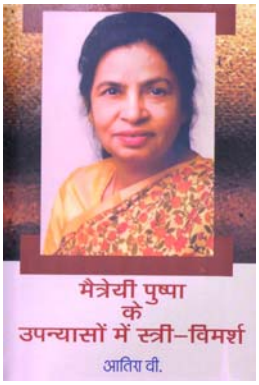

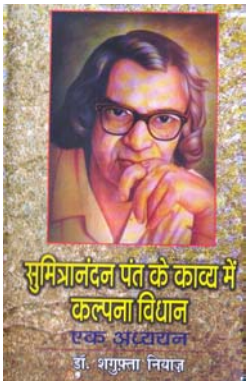

21वीं शती की हिंदी कविता में समाज सापेक्षता

अंकुश जाधव

21 वीं शती का युग बाज़ारीकरण, निजीकरण और भूमण्डलीकरण का है। इस काल ने समस्त मानव जाति को अस्थिर बना दिया है। संस्कृति, मानव-मूल्य धीरे-धीरे नष्ट हो रहे है। मनुष्य अपना अस्तित्व निर्माण करने के लिए चिंताग्रस्त है तो दूसरी ओर जो पहले वाली रियासत को बरकरार रखने की चिंता से व्यथित है। इसलिए 21वीं शती का जीवन एक तरह से निराशा, समस्या, दुख, वेदना से भरा हुआ प्रतीत होता है। इसका सुर हमें वर्तमान समय के साहित्य में भी दिखाई देता है। आज की कविता भी इस बातों का एक तरह सच्चा रूप ही प्रस्तुत करती है। जिसमें इन समस्त मानव मन के निराशा चिंता को अभिव्यक्ति मिलती है।

वर्तमान समय में जिस तरह नये-नये जीवन आवश्यक वस्तु से मनुष्य माला-माला हो रहा है तथा इस मायावी दुनिया में खुशी पाने के लिए प्रयास कर रहा है। उसी तरह दुख की गर्द छाया में दिन-ब-दिन निराशा चिंता के अलावा कुछ भी नहीं प्राप्त कर रहा है। ऐसे समय अपने अतीत के क्षण ही उसकी एकमात्र कुंजी है तथा उसी का ही सहारा है। जिसकी वह याद करता है। जैसे-

''एक अनोखी खुशबू आती है
किताबों की खुशबू
कागज़ की खुशबू
और खुशबू उस बचपन की
जो यहाँ घूमता-फिरता था,
मस्त-चिंतामुक्त!!''[1]

हिंदी के कवियों ने जिस प्रकार समय का सरोकार होने की ठान ली है। वह इस बात का निर्वाह भी उतनी ही सजगता से करते हैं। इसीलिए यह कवि हर समस्या के विरूद्ध लड़ने की बात करते हैं। भले ही सेज जैसे प्रकल्प भी क्यों न हो। उसके साथ दो हाथ करने के लिए किसान को प्रेरित करते हुए कवि 'हम खेत न हरिजन छोड़ेगें' में कहता है।

''सिंदूर की हो या नाएडा की
सबकी बस एक कहानी है
हमने ही तुम्हें बनाया है
और तुम हमसे ही खेलोगें हम अगर नहीं देना चाहें
तो जबरन कैसे ले लोगे?
तुम साथी दौलतवालों के
यह भेद तुम्हारा खालेंगें
हम खेत न हरगिज़ छोड़ेगें।''[2]

21वीं सदी की हिंदी कविता ने जिस तरह हर एक सूक्ष्म समस्या को कविता में अभिव्यक्ति दी है। उसी तरह पाश्चात्य जगत से आ गई, स्वछंद जीवन की परंपरा जिसे 'लिव इन रिलेशन' कहते हैं जिसके तहत किसी भी बंधन के बिना स्त्री-पुरुष अपने इच्छा से इस छत के नीचे आते हैं और जब इच्छा होती है। तो एक-दूसरे को छोड़कर चले जाते हैं। इस नये जीवनशैली के संदर्भ में कवि कहता है कि

''दोनों अपनी-अपनी दिशाओं में
उगते हैं और अस्त होते हैं,
वे सिर्फ स्त्री व पुरुष भर हैं।
साथ-साथ सोते हैं
एक 'लिव-इन-रिलेशन' की चादर ओढ़कर।''[3]

आज देश की बढ़ती आबादी, भ्रष्टाचार, मँहगाई के कारण मनुष्य का जीवन जीना दुष्कर कार्य हो गया है। ऐसे समय इस घुटन भरे जीवन से लोग परेशान है। इसी बात का चित्रण वर्तमान समय का कवि करता है। 'इस घुटन की त्रासदी में' इस कविता में कवि योगेंद्र कुमार कहते हैं-

''भूख, बेकारी, अभावों का घना छाया अँधेरा
दूर तक दिखता नहीं कोई व्यवस्था का सबेरा
रात गहरी हो गई है, चाँदनी भी खो गई है।''[4]

इस तरह आज का हिंदी कवि भी वर्तमान व्यवस्था से चिंतित है। क्योंकि उसे कई पर आशा की किरण नहीं दिखाई देती जो इस समस्या से मार्ग दिखाए।

21 वीं सदी कविता जिस तरह मनुष्य जीवन के विभिन्न समस्याओं से जुड़ जाती है। उसी तरह नारी की, वेदना, पीड़ा से भी नहीं मोड़ती। वह भी विमर्श के दौर में खड़ी हो जाती है। घर में काम करने वाली उस स्त्री के जीवन को समेटने का प्रयास करती है। जो परिवार के लिए हवनकुण्ड बना है।

जिसमें कोई भी सुख, चैन नहीं है। जैसे-''घर की चक्की में/पिसती स्त्री/नहीं समझ पाती/कैसे हो जाता है/सूर्योदय से सूर्यास्त/जब चालीस के पार/उछल जाता है पारा/जूझती है तब भी आग से/सारी दोपहर और शाम।''[5]

इस तरह 21वीं सदी की कविता वर्तमान समय के निराशा, कुण्ठा, पीड़ा से जूझते हुए मनुष्य की दासता है। जिसमें एक तरह से पूँजीपति, सरजामदार, शासन व्यवस्था के विरूद्ध रोब है। तो दूसरी ओर इन तमाम समस्याओं संघर्षरत व्यक्ति की आवाज़ है। नारी, किसान के साथ-साथ विभिन्न तरह से उभरते सामाजिक समस्याओं को भी अभिव्यक्ति देने का कार्य यह कविता करती है।

आज का मनुष्य भौतिक सुख के पीछे दौड़ता हुआ नज़र आता है। सत्य से दूर काल्पनिक दुनिया में रममान होने में ही अधिक आनंद उसे मिलने लगा है। इसीलिए उसे अब किताबें अनावश्यक लगने लगी है। जो समाज को ज्ञान देती है, सत्य का रास्ता दिखाती है। उनके लिए घर में जगह नहीं है क्योंकि भौतिक सुख देने वाली वस्तु ने सारा घर ऐंठ लिया है। 'पुस्तक' इस कविता में कवि विश्वनाथ प्रसाद तिवारी जी कहती है-''नहीं, इस कमरें में नहीं/उधर/उस सीढ़ी के नीचे /उस गैराज के कोने में ले जाओ/पुस्तके/वहाँ, जहाँ नहीं अंट सकती फ्रीज/जहाँ नहीं लग सकता आदमकद शीशा।''[6]

इस तरह आज की हिंदी कविता में समाज के बदलते मानवीय चेहरे को बड़े ही यथार्थ रूप में अभिव्यक्ति दी है। यह कविता आज के भूमण्डलीकरण के कारण मनुष्य की बदलती जरूरते, भूलते मानवीय मूल्य, संस्कृति का होता हुआ ह्रास, शहरीकरण, नारी-पुरुषों के बदलते संबंध जैसे कई समस्याओं का जीता-जागता चेहरा आज की कविता में दिखाई देता है।

संदर्भ-

1. (सं.) गिरिजाशरण अग्रवाल, शोध-दिशा, जुलाई-सितंबर 2011 पृ. 54
2. (सं.) विभूति नारायण राय, वर्तमान साहित्य, अगस्त 2013, पृ. 6-7
3. (सं.) सर्वमित्रा सुरजन, अक्षरपर्व, जून 2013, पृ. 23
4. (सं.) लक्ष्मीकांत पाण्डेय, नव निकष, मार्च 2009, पृ. 68
5. (सं.) नामवर सिंह, आलोचना, जनवरी-मार्च 2010, पृ. 100
6. (सं.) सत्यव्रत, समकालीन साहित्य समाचार, फरवरी 2012 (मुख पृष्ठ)

हिंदी विभाग, डॉ. बा. आं. म. विश्वविद्यालय, औरंगाबाद

पृ. 54 का शेष भाग.....

निभा रहे हैं। इनमें मोहक जीवन शैलियों को इस अंदाज में परोसा जा रहा है, जहाँ नये विकल्पों के अनगिनत द्वार खुलते हैं। पर ये द्वार संक्रमण के दौर से गुज़र रहे भारतीय समाज की और उसके आधे हिस्से (स्त्री) को कहाँ ले जाएंगे, कोई भी कह-बता पाने में सक्षम् नहीं है। पारिवारिक सम्बन्धों के आधार के रूप में विज्ञापित वस्तुएँ दिखाई जा रही हैं। मीडिया नये सांस्कृतिक और मानवीय मूल्य, जो उपभोक्तावाद पर आश्रित है, के लिए जमकर 'कंडीशनिंग' करने में लगा हुआ है। कंडीशनिंग के इस कारोबार को फैलाने के लिए सबसे 'सॉफ्ट टारगेट' स्त्रियाँ और बच्चे ही बनते हैं। इसलिए उन्हीं को केन्द्र में रखकर तमाम सीरियल और रियलिटी शो तैयार किये-कराये, देखे-दिखाये जा रहे हैं। मीडिया घरानों को इसी में चाँदी नज़र आती है। अख़बार वाले भी इसमें भला पीछे क्यों और कैसे रहेंगे? उनके सातों दिन के परिशिष्ट नये उपभोक्तवादी मूल्यों की स्थापना में ही लगे नज़र आते हैं। यहाँ भी स्त्रियाँ ही उनका लक्षित समूह बनी हुई हैं। आखिर पुरुष वर्ग तो उन्हें ही देखना पसन्द करता है और बाज़ारी शक्तियाँ दिखाना।

निभा रहे हैं। इनमें मोहक जीवन शैलियों को इस अंदाज में परोसा जा रहा है, जहाँ नये विकल्पों के अनगिनत द्वार खुलते हैं। पर ये द्वार संक्रमण के दौर से गुज़र रहे भारतीय समाज की और उसके आधे हिस्से (स्त्री) को कहाँ ले जाएंगे, कोई भी कह-बता पाने में सक्षम् नहीं है। पारिवारिक सम्बन्धों के आधार के रूप में विज्ञापित वस्तुएँ दिखाई जा रही हैं। मीडिया नये सांस्कृतिक और मानवीय मूल्य, जो उपभोक्तावाद पर आश्रित है, के लिए जमकर 'कंडीशनिंग' करने में लगा हुआ है। कंडीशनिंग के इस कारोबार को फैलाने के लिए सबसे 'सॉफ्ट टारगेट' स्त्रियाँ और बच्चे ही बनते हैं। इसलिए उन्हीं को केन्द्र में रखकर तमाम सीरियल और रियलिटी शो तैयार किये-कराये, देखे-दिखाये जा रहे हैं। मीडिया घरानों को इसी में चाँदी नज़र आती है। अख़बार वाले भी इसमें भला पीछे क्यों और कैसे रहेंगे? उनके सातों दिन के परिशिष्ट नये उपभोक्तवादी मूल्यों की स्थापना में ही लगे नज़र आते हैं। यहाँ भी स्त्रियाँ ही उनका लक्षित समूह बनी हुई हैं। आखिर पुरुष वर्ग तो उन्हें ही देखना पसन्द करता है और बाज़ारी शक्तियाँ दिखाना।

हिन्दी विभाग, सतीश चन्द्र धवन राजकीय महाविद्यालय, लुधियाना

बातां री फुलवाड़ी में मानवता
(विशेष–भाग–3 के सन्दर्भ में)

सुनीला छापर
डॉ. सुमन शर्मा

विजयदान देथा राजस्थान के जनमानस में प्रचलित विविध लोक कहानियों को अपनी भाषा और शैली में संग्रह व पुनर्सृजन करने वाले लेखक थे। इन्हें बिज्जी के नाम से भी जानते हैं। इनका जन्म 1 सितम्बर 1926 को जोधपुर के बोरून्दा गाँव में हुआ। काव्य की परम्परा इनके परिवार में पीढ़ियों से थी। देथा सादगी, सरलता और मन की विशालता से सम्पन्न व्यक्ति थे।

देथा ने सर्वप्रथम कविताओं से लेखन कार्य प्रारम्भ किया। बाद में 'बातां री फुलवाड़ी' के 14 भागों का राजस्थानी भाषा में पुनर्सृजन किया तथा इन कहानियों को विशेष शैली में लिखकर संकलित किया। इन लोक कहानियों में देथा ने ग्रामीण जीवन और मानव मूल्यों का यथार्थ वर्णन किया है। उन्होंने हिन्दी में भी कहानियाँ व उपन्यास लिखे हैं।

''मन शरीर का राजा है। मन की शक्ति का पार नहीं है। जैसा मनुष्य का मन होता है, वैसा ही वह बनता है। यदि मन प्रसन्न है तो दुनिया हमें सुखी जान पड़ती है। यदि मन दुःखी है तो दुनिया हमें 'सूखी' जान पड़ती है। मन के इस अद्‌भुत चमत्कार का कुछ ठिकाना नहीं। मानवता की उत्पत्ति 'मन' शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है मनन करना। दूसरा अर्थ है सहानुभूति करना।''[1] मनुष्य का मन अगर कोमल है तो वह व्यक्ति मानवता से परिपूर्ण होगा, इसके विपरीत अगर किसी मनुष्य का मन कठोर हुआ तो वह निर्दयी तथा संवेदनाओं से रहित होगा। मन का अर्थ मनन करने से लिया जाता है। उसका एक अर्थ सहानुभूति के रूप में लिया जाता है। मनन करने का सम्बन्ध बुद्धि से तथा सहानुभूति का सम्बन्ध हृदय से है। इसलिए 'मन' बुद्धि व हृदय दोनों के गुणों से सम्पन्न रहता है। ''एक मनस्विता शब्द भी है, जो मन से ही बनता है। इसका अर्थ है जो मन को ठीक लगता है, उस पर डटे रहने की वृत्ति। इस तरह 'मानवता' में मुख्य तीन गुणों का समावेश हो जाता है। मनन करना, सहानुभूति रखना, निश्चय पर अटल रहना। इन तीनों गुणों से मिलकर मानवता परिपूर्ण हो जाती है।''[2] विजयदान देथा द्वारा पुनर्सृजित लोक कहानियों 'बातां री फुलवाड़ी भाग-3 में उन्होंने राजकुमारों के माध्यम से ऐसी ही मानवता का वर्णन किया है जो मानव के लिए तो है ही साथ ही जगत के सभी प्राणियों के लिए भी है। इस लोक कहानी संग्रह में मनुष्य को मानवता की शिक्षा देते हुए मानव जीवन में विशिष्ट व श्रेष्ठ कार्य करने के दर्शन होते हैं।

आठ राजकुमार कहानियों का सार इस प्रकार है - एक राज्य में एक धर्मी, शीलवन्त, राजा अपनी सुन्दर सहृदय रानी और राजकुमारों के साथ रहता है। रानी की दया मनुष्यों के साथ-साथ पशु-पक्षियों पर भी थी। रानी की मृत्यु के पश्चात् राजा ने दूसरा विवाह किया। दूसरी रानी सुन्दर थी, लेकिन बहुत चतुर। वह राजकुमारों को षड्‌यंत्र रचकर उन्हें देश से निष्कासित करवा देती है। राज्य से बाहर एक तपस्वी उन्हें एक वर्ष के लिए अलग-अलग दिशाओं में जाकर मानव व जीवों की सेवा करने के लिए कहते हैं-''विषपूर्ण नागराज और कुटिल दूती के मानस प्रथम राजकुमार के हृदय की उज्ज्वल स्पर्शमणि को छूकर विभक्त हो जाते हैं। दूसरा राजकुमार हिंसक सिंह के पाँवों से काँटा निकालकर उसे अपना चिर ऋणी बना लेता है। तीसरा राजकुमार शिकारी के विष बुझे तीरों से तीतर के राजा और धीवर के प्राण नाशी जाल से मछलियों की रानी का बचा लेता है। उसके स्नेहपूर्ण व्यवहार द्वारा हिंसापूर्ण व्यवहार की क्रिया में निश्चय ही अन्तर आ जाता है। चौथा राजकुमार नरभक्षी दैत्य के सामने एक अजीब विरोधामास उत्पन्न कर देता है। .... तुम्हें जीवन व मृत्यु दोनों का एकाधिकार मिला हुआ है। तुमने जीवनदान का कार्य किया है ?.... या संहार ही संहार किया है। .....सकारात्मक दृष्टि का उदय ही नकारात्मक कार्यों के अँधियारे का नाशक है।''[3]

पाँचवाँ राजकुमार जंगल में चकवा चकवी की बातें सुनता है। वह लालची दैत्य की करनी से दुःखी होता है। राजकुमार उसे सदाचार का पाठ पढ़ाता है कि मरने के बाद धन, माया नहीं बल्कि प्राणी मात्र के लिये किये गये सत्कार्यों का फल साथ जाता है। धन, माया की स्थूलता के ज्ञान से दैत्य का मन बदल जाता है।

छठा राजकुमार ठग के द्वारा सिखाए पक्षी व जानवरों को मानवता का बोध कराता है। वे पशु पक्षियों को सिखाए छल, कपट के लिए मनुष्य को जिम्मेदार मानते हैं। राजकुमार अपने

ज्ञान द्वारा ठग को मानवता की शिक्षा देता है। सातवाँ राजकुमार मनुष्य की कुप्रवृत्तियों छल, कपट, लालच, स्वार्थ से दुःखी यमराज को अपने व्यवहार व ज्ञान से नया बोध करवाता है। आठवाँ राजकुमार पक्षी के रूप में एक परी को बचाता है। इन्द्रलोक में इन्द्र को मानवीय जीवन की श्रेष्ठता का ज्ञान कराता हैं।

इस प्रकार सभी राजकुमार अहिंसा के द्वारा मानवता व सत् की स्थापना करते हैं। विजयदान देथा की लोक कहानियों में जहाँ राजकुमार दया व मानवता की साक्षात् मूर्तियाँ हैं वहीं कई लोग उतने ही निर्दयी हैं। जब चिड़ियाँ महल में अण्डे देने की इच्छा व्यक्त करती है तो निर्दयी रानी के मना करने तथा महल में गन्दगी न करने की बात कहती है, जब चिड़ा कहता है-''अभी तो महल में धूल, मिट्टी तुम्हें अच्छी नहीं लगती लेकिन मरने के बाद तुम्हारा शरीर मिट्टी हो जाएगा।''[4] वह चिड़िया से कहता है-''पत्थर से तेल नहीं निकलता, दया की साक्षात् मूर्ति तो बड़ी रानी थी यह तो बहुत चतुर व निर्दयी है।''[5]

देथा ने एक पक्षी के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि संसार नश्वर है और मनुष्य को गर्व का त्याग कर मानवोचित कार्य करना चाहिए। ''धर्म मानव जीवन को राग द्वेष, लोभ-लालच, मोह, छल आदि से विमुक्त करके अन्त में शान्ति प्रदान करता है।''[6] देथा ने लोक कहानियों में धर्म व धर्म के बदलते रूप के नाम पर पाखण्ड का भी वर्णन किया है।'' विजयदान देथा के कथा साहित्य में धर्म जिस रूप में चित्रित हुआ है, उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि लोक जीवन में धर्म पाखण्ड का पर्याय बन कर रह गया है। परन्तु आज भी धर्म का सही सच्चा, सरल रूप प्रचलित है जिसका वर्णन लेखक ने किया है।''[7]

उन्होंने राजकुमार के माध्यम से सज्जनता, दया तथा निःस्वार्थ भाव से सेवा करने की प्रेरणा मनुष्य को दी है। देश निर्वासन के बाद जब राजकुमार निःस्वार्थ भाव से साधु की सेवा करते हैं, तब बड़ा राजकुमार कहता है-''हमने किसी लालच में आपकी सेवा नहीं की, यह तो हमारा कर्त्तव्य था। हमें बस इतना आशीष दें कि हम सदैव सुमार्ग पर चलें, न डरें। करूणा, सत्य और धर्म के मार्ग पर अडिग रहें।''[7] साधु उनके व्यवहार से प्रसन्न होता है तथा मानवता की सेवा में अपना जीवन बिताने को श्रेष्ठ मानता है। साधु राजकुमारों से कहता है- ''दुनिया में करुणा व सुमार्ग पर चलना ही जीवन का सार है। यही असली आनन्द है।''[8]

पहला राजकुमार पाताल लोक का राजा बन जाता है पर वहाँ के मायावी संसार में उसे रुचि नहीं है क्योंकि वह मानव जन्म को अमूल्य मानता है और परिश्रम तथा जीवन में परिवर्तन को ज़रूरी मानता है। सुख के साथ दुःख, रात के बाद दिन और परोपकारी जीवन को श्रेष्ठ मानता है। वह नागकन्या से कहता है- ''मानव जीवन के लिए तो देवता भी तरसते हैं। तुम्हारे पाताल लोक में न तो किसी वस्तु का अन्त है और न ही नवजीवन है, यहाँ सब कुछ स्थिर है। मेरी समझ में तो यही नर्क है।''[9]

देथा की इन कहानियों में जहाँ मानवता का वर्णन हुआ है वहीं इसके विपरीत व्यवहार, कुटिलता, क्रूरता, छल, स्वार्थ आदि का भी वर्णन किया गया है। चौथे व पाँचवें राजकुमार की कहानियों में दैत्य के माध्यम से मनुष्य की लालची व क्रूर प्रवृत्तियों का वर्णन किया गया है। इन कहानियों में मानवीय व्यवहार, असद्वृत्तियों का सदैव विनाश होता है। उन्हें पराजय का मुख देखना पड़ता है। देथा ने स्थूल काया का नाश न दिखाकर हिंसक, क्रूर, निर्दयी, कठोर प्राणियों के हृदय में परिवर्तन होना दिखाया है। पर बुरे लोग भी जब अच्छे लोगों की संगति में रहते हैं तो उनमें भी परिवर्तन आ जाता है। जब मंत्री पुत्र चतुर दूती को पाताल में नागकन्या के अपहरण के लिए भेजता है, तब राजकुमार व नागकन्या के व्यवहार के कारण दूती का हृदय परिवर्तन हो जाता है, वह मंत्री पुत्र से कहती है- ''साथ रहने से अच्छे-बुरे की पहचान होती है, उनका व्यवहार देखकर उनके साथ छलकपट करने का भी मन नहीं करता। जीवन में पहली बार मेरे बुरे मन में भलाई की चिंगारी लगी है।''[10]

दूसरा राजकुमार कहानी में लेखक ने मनुष्य व जानवर की वृत्तियों के बारे में बताया है जब राजकुमार शेर की सहायता करता है तब शेर धन से भरा घड़ा उसे देता है, तो ब्राह्मण के मन में यह शंका रहती है, कि यह धन मुझे देगा या नहीं, उसके मन के भाव समझकर शेर ब्राह्मण से कहता है-''आप मन में शंका मत कीजिए। राजकुमार धन का भार उठाने के अतिरिक्त इसमें से अपना हिस्सा नहीं मागेंगे। मैं जानवर होकर समझ गया। लेकिन आपकी समझ में यह बात नहीं आई। मैंने सुना है कि मनुष्य में जानवर से ज्यादा ज्ञान होता है।''[11] जब सिंह ब्राह्मण के लालची व कुटिल स्वभाव को समझ गया तब वह उसे पुनः कहता है कि - ''आपको देखकर ऐसा ज्ञान होता है कि बहुत से लोग जानवरों से भी ज्यादा नीच व अधमी होते हैं। धन सभी व्यक्तियों के अविश्वास का कारण बनता है।''[12] धन के कारण लोगों के व्यवहार में परिवर्तन आ जाता है, वे स्वार्थी हो जाते हैं तथा परोपकार का कार्य छोड़कर, अपने स्वार्थों की पूर्ति करने लगते हैं। इसी बारे में लालची ब्राह्मण सोचता है -''धन की जड़ कलेजे में होती है। किसी के मन का

भेद नहीं जाना जा सकता । मनुष्य को स्वयं के व्यवहार के बारे में पता नहीं चलता, तो दूसरों का क्या कह सकते हैं।''[13] देथा ने कहानियों में अच्छे व बुरे दोनों प्रकार के मनुष्यों का वर्णन किया है। जहाँ ब्राह्मण जैसा लालची व स्वार्थी व्यक्ति है तो बंजारे जैसा नेक मनुष्य भी है। ब्राह्मण द्वारा कुँए में धकेले जाने के बाद बंजारा राजकुमार को बचाता है, वह कहता है -''मनुष्य ही मनुष्य के काम आता है।''[14] वह उसे पास के राज्य की सीमा में प्रेवश न करने की सलाह देता है क्योंकि वहाँ की राजकुमारी अपने थोथे घमण्ड के लिए सैकड़ों मनुष्यों को भूखे सिंह का भोजन बनवा देती है। यह सुनकर राजकुमार दुःखी होकर कहता है-''कैसा जुल्म है मुझे आश्चर्य है कि वहाँ की जनता चुपचाप ऐसा अन्याय सहन करती है। मैं इस अन्याय को मिटाऊँगा क्योंकि मन दृढ़ निश्चयी व शंका रहित हो तो शेर भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता ।''[15]

मानवता की स्थापना के लिए धर्म का अपना स्थान है। धर्म के द्वारा ''मानव जीवन को राग, द्वेष, लोभ, लालच, मोह,, छल, कपट आदि से विमुक्त करके अन्तर्शान्ति प्रदान करता है। ... जीवन का अलौकिक आनन्द धर्म के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।.... धर्म जीवन में प्रेम सौहार्द और लोक मंगल की भावना को प्रतिष्ठित करता है।''[16]

अन्याय व अत्याचार का विरोध करना भी मानव मूल्य है। यह जनता की सोई हुई मानवता को जगाता है। इसी संदर्भ में जब घमण्डी राजकुमारी के सिपाही राजकुमार को सिंह के सामने ले जाते हैं तो तमाशा देखने आई जनता से वह कहता है-''भूखे शेर के द्वारा मनुष्य के मरने का तमाशा देखने आप एकत्र हुए हैं। आप हजारों लोग एक फूंक मारकर बड़े से बड़े राज्य का तख्ता पलट सकते हैं, मुझे आश्चर्य है कि इतनी खुशी से किसी मनुष्य के मरने का तमाशा कैसे देख सकते है।''[17]

किसी भी मनुष्य द्वारा किया गया उपकार व्यर्थ नहीं जाता। मनुष्य उपकार भूल जाता है। लेकिन पशु-पक्षी नहीं भूलते। राजकुमार द्वारा विवाह के लिए शर्त पूरी करने पर राजकुमारी से विवाह के पश्चात् राजकुमारी पूछती है कि उसने वह असम्भव कार्य कैसे किया। राजकुमार उससे कहता है - ''किसी के साथ सपने में भी की गई भलाई व्यर्थ नहीं जाती। चाहे मनुष्य हो, चाहे पशु-पक्षी। मनुष्य बस एक छोटी-सी बात ध्यान रखे तो बड़े से बड़ा कार्य कर सकता है। भलाई स्वयं आनन्द है, भलाई करना स्वयं मीठा फल है। भलाई अपने आप में प्रकाश है।''[18]

कहने को मनुष्य चिंतनशील प्राणी है। लेकिन मनुष्य ने जानवरों को मारा, प्रकृति को नष्ट किया। अब वह अपने स्वार्थों के लिए एक मनुष्य, दूसरे मनुष्य को मार रहा है। सातवाँ राजकुमार कहानी में यही दर्शाया गया है कि यमलोक में यमराज भी नाराज व परेशान हैं, क्योंकि मनुष्य के कर्मों के अनुसार उसकी गति निर्धारित करने का कार्य यमलोक व देवलोक का है। यह काम भी मनुष्य उससे धीरे-धीरे छीन रहा है। यमराज राजकुमार से कहते हैं-''मनुष्य अपनी इच्छा से मनुष्य को मारने लगे हैं, हर कार्य को अपने अनुसार करने लगे हैं, हमें डर है कि यमलोक व देवलोक पर अपना अधिकार न कर लें।''[19]

देथा की यह कहानियाँ मानवीय चेतना से पूर्ण हैं। इन कहानियों में हर तरह के नीति, उपदेश, ज्ञान, मानवता, मनोरंजक बातों, किस्सों से सुसज्जित किया है। इसमें अच्छे बुरे सभी तरह के मनुष्यों व पशु-पक्षियों के व्यवहार का मानवीय वर्णन किया गया है। राजकुमारों के माध्यम से मानव के सद्गुणों का वर्णन किया गया है। वे अपने व्यवहार से सभी के हृदय में मानवीय चेतना जागृत कर उनका हृदय परिवर्तन करते हैं। दुनिया में मानवता को फैलाना सभी राजकुमार अपने जीवन का उद्देश्य मानते हैं। दया व सहानुभूति रखना, अत्याचार, अन्याय का विरोध करना आदि मानव मूल्य प्रत्येक मनुष्य व कठोर हृदय वाले व्यक्ति के हृदय परिवर्तन करने में अपना अमूल्य योगदान देते हैं।

सन्दर्भ-

1. हरिभाऊ उपाध्याय, बदलते संदर्भ और साहित्यकार, पृ. 24
2. वही
3. बातां री फुलवाड़ी, भाग-3, पृ. 25-26
4. वही, पृ. 58
5. वही
6. गार्गी चौधरी, विजयदान देथा, लोक एवं संस्कृति, पृ. 119
7. वही
8. बातां री फुलवाड़ी, भाग-3, पृ.77
9. वही, पृ. 78
10. वही, पृ. 87
11. वही, पृ. 98
12. वही, पृ. 107
13. वही, पृ. 108
14. वही, पृ. 109
15. वही, पृ. 111
16. विजयदान देथा, लोक एवं संस्कृति, पृ. 119
17. बातां री फुलवाड़ी, भाग-3, पृ. 112
18. वही, पृ. 126
19. वही, पृ. 126

राधाकिशन भवन, बडलों का चौक, जोधपुर

देवर्षि कलानाथ शास्त्री रचित संस्कृत नाट्यवल्लरी में ध्वनि प्रभाव

अर्चना सिंह चौधरी
प्रो. मीरा शर्मा

ध्वनिरूपक का स्वरूप

नाट्य साहित्य की पुरातन विधा है जिसमें अभिनेता अपने द्वारा जनजीवन में व्याप्त विविध प्रकार के भावों तथा घटनाओं को दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। 'अवस्थानुकृतिर्नाट्यं।'[1] अवस्था का अनुकरण 'नाट्य' कहलाता है। नाट्य के लिए 'रूपक' शब्द का भी व्यवहार किया जाता है।

'रूपंदृश्यतयोच्यते' दृश्य होने के कारण यह नाट्य 'रूप' भी कहलाता है।[2] 'रूपकं तत्समारोपात।' आरोप किये जाने के कारण वह नाट्य 'रूपक' कहलाता है।[3]

धनंजय के अनुसार 'रूप' शब्द की व्युत्पत्ति है 'रूप्यते दृश्यते' इति। नाट्यदर्पण के अनुसार 'रूप्यन्ते अभिनीयन्ते इति रूपाणि नाटकादीनि।'[4]

रूपक - 'रूपम एवं रूपकम्' या 'रूपयति इति' अथवा 'अरोपयति इति'।

रूपक शब्द (रूह+णिच्') के योग से बना है।[5] नट में रामादि के रूप का आरोप करना ही रूपक शब्द की प्रवृत्ति का निर्मित है।

'दशधैव रसाश्रयम्' रस पर आश्रित होने वाला यह 'रूपक' दस प्रकार का होता है।

'नाटकसप्रकरणं भाणः प्रसहसनं डिमः।/व्यायोग समवकारौ वीथ्यटेहामृगा इति।।'[6]

अर्थात् नाटक प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग समवकार, वीथी, अहं, ईहामृग आदि दस रूपक माने गये हैं।

ध्वनि रूपक का उदय

लोक रुचि एवं लोकवृत्ति के अनुरूप साहित्य जगत में अनेक नवीन विधाओं का उदय हुआ जिसमें 'ध्वनि रूपक' सर्वप्रसिद्ध रही। रेडियो द्वारा नाटकों का प्रसारण प्रारम्भ हुआ तथा लोक रुचि की दृष्टि से लोकप्रिय हो गया। फलतः ध्वनि माध्यम से प्रस्तुत की जाने वाली रेडियो रूपकों की एक विधा का प्रचलन अस्तित्व में आया, अन्य विधाओं की तरह संस्कृत माध्यम से भी इस विधा में रूपक लिखे जाने लगे।

रेडियो श्रव्य माध्यम है अतः रेडियो रूपक भी श्रव्य होते है। इसमें ध्वनि की प्रधानता होती है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने रेडियो नाटक को 'ध्वनि रूपक' की संज्ञा से अभिहित किया है।[7]

जयपुर प्रारम्भ से ही नाट्यशिल्प की रंगस्थली रहा है। साहित्य की अन्य विधाओं के लेखन के साथ नाट्य लेखन भी प्रचुर मात्रा में हुआ। जयपुर में नाट्य संघ की स्थापना ने इस विधा के विकास को गति प्रदान की। जयपुर आकाशवाणी केन्द्र के उद्घाटन के अनन्तर संस्कृत नाट्य प्रसारण की गतिविधियाँ चरमोत्कर्ष पर रहीं।

सर्वप्रथम 1938 ई. में पहला रेडियो रूपक 'ऑल इंडिया रेडियो' से प्रसारित हुआ जिसमें हिन्दी के प्रसिद्ध रंगसंकेत, दृश्यान्तर आदि प्रमुख हैं।

सन् 1956 में जयपुर से रेडियो (ध्वनि रूपक) का प्रसारण प्रारम्भ हुआ जिसमें 'संस्कृत नाट्यवल्लरी' अत्यधिक प्रसिद्ध ध्वनि रूपक है।

इसके अतिरिक्त संस्कृत में अनेक ध्वनि रूपक ग्रंथ लिखे गये जिसमें कवि शिरोमणि भट्ट 'मथुरानाथ शास्त्री' का नाम विशेष उल्लेखनीय है। साथ ही श्री 'गगधर द्विवेदी' ने 'मृगावावली' (ध्वनिरूपक), 'डॉ. हरिराम आचार्य' का मेघदूत में वर्णित यक्ष के दाम्पत्य प्रणय एवं विरह को आधार मानकर लिखा गया रूपक प्रसिद्ध है। देवर्षि कलानाथ शास्त्री विरचित 'संस्कृत नाट्यवल्लरी' एक प्रसिद्ध ध्वनि रूपक है इसमें छोटे-छोटे ध्वनि रूपकों का समन्वय किया गया है।

''रेडियो नाटक का माध्यम अभी हमारे लिए नया है इसके लिए कोई ऐसा नाम भी निश्चित नहीं हो सका है जो उचित एवं सर्वमान्य हो।''[8]

(अ) ध्वनि प्रभाव

रेडियो रूपक केवल श्रव्य होने के कारण उसमें ध्वनि प्रभावों का आश्रय लिया जाता है। ध्वनि प्रभाव से तात्पर्य उन ध्वनियों से है जिनसे रूपक के वातावरण निर्माण में सहायता ली जा सके। हास्य, रूदन, घोड़े, बन्दूक इत्यादि के रिकार्ड

प्रत्येक रडियो केन्द्र में रखे जाते है। रेडियो रूपक में नाट्य प्रभाव कथानक की व्याख्या भी करते है। कथानक में कही-कही संवाद के बीच कुछ क्रिया विशेष होती हैं, जैसे चाय पीना, खिड़कियाँ दरवाजे आदि-आदि बन्द करना आदि क्रियाओं की व्याख्या भी ध्वनि प्रभावों द्वारा ही की जाती है।

देवर्षि ने संस्कृत नाट्यवल्लरी में पूर्णरूपेण ध्वनि का समन्वय किया है उन्होंने इस रूपक में सभी प्रकार की ध्वनि जैसे चीत्कार ध्वनि, हास्य ध्वनि, युद्ध ध्वनि, क्रन्दन ध्वनि, रथ ध्वनि, अश्वखुर ध्वनि, पशु-पक्षियों की ध्वनि आदि का इतना सजीव वर्णन किया है जिसे सुनकर यह सजीव चित्र श्रोताओं के मानस पटल पर अंकित हो जाता है।

चीत्कार ध्वनि

रूपकों में ध्वनि रूप में चीत्कार ध्वनि का प्रयोग किया जाता है। चीत्कार का अर्थ है चिल्लाना। चीत्कार ध्वनि वह ध्वनि है जिसमें अभिनेता या पात्र अपनी वार्ता को चिल्लाते हुए स्पष्ट करते है। यह चीत्कार ध्वनि किसी भी प्रकार की हो सकती है। यथा- क्रोध में चीत्कार ध्वनि, किसी भी भयानक वस्तु को देखकर चिल्लाना, दुःख में विलाप करते हुए चिल्लाना, अकस्मात् शुभ समाचार सुनने पर खुशी से चिल्लाना आदि।

'नाट्यवल्लरी' के 'नाट्यशास्त्रावतार' नामक रूपक में चीत्कार ध्वनि का उदाहरण इस प्रकार मिलता है- महर्षि भरत के द्वारा 'इन्द्रविजय' नाटक के प्रयोग में जब दैत्यों ने विघ्न उपस्थित किया तो इससे देवराज इन्द्र अत्यधिक क्रोधित हो गये और क्रोध की अवस्था में दैत्यों को जर्जर दण्ड के द्वारा मारने के लिए उद्यत हो जाते है और मंजुकेशी के समक्ष क्रोधित होकर चिल्लाते हुए कहते है-''मा भैषीः। अहमधुना नवीनेन शस्त्रेण सर्वानपि दैत्यान जर्जरीकृत शरीरान् क्षणात्पात यिष्यामि।/भो भो दुर्मतयः गृहयतामिदम्।''[9](चीत्कार ध्वनयः)

यहाँ रूपककार के द्वारा चीत्कार ध्वनि का निर्देश किया है वस्तुतः इन्द्र के क्रोधित वचनों के माध्यम से इतना सुन्दर वातावरण तैयार नहीं होता जितना कि इन्द्र के बोलने से विराम लेने पर जो चीत्कार की विशेष ध्वनि से वातावरण तैयार होता है। श्रोता के समक्ष सम्पूर्ण दृश्य एकदम स्पष्ट हो जाता है।

कोलाहल ध्वनि

ध्वनि रूपकों में 'कोलाहल' ध्वनि प्रमुख ध्वनि है। कोलाहल का अर्थ है- शोर। यह ध्वनि किसी राजसभा में उपस्थित लोगों के द्वारा, युद्ध में, मंगल आयोजनों में प्रायः सुनने को मिलती है।

'संस्कृत नाट्यवल्लरी' में भी रचनाकार ने 'कोलाहल' ध्वनि के माध्यम से रूपक को सजीव रूप प्रदान किया है। जब सिद्धार्थ तीनों दृश्यों को देखकर तथा गहन चिन्तन करने के पश्चात् अपने पिता के समक्ष जाकर संन्यास आश्रम ग्रहण करने के लिए कहते है तब यशोधरा उन्हें रोकती हुई तीव्र स्वर में कहती है- हे कुमार रुको!

इस चित्र को रेडियो रूपककार ने श्रोताओं के मानस पटल पर अंकित करने के लिए 'कोलाहल' ध्वनि का प्रयोग किया है इसमें ऐसा प्रतीत होता है कि वह साक्षात् राजसभा में बैठा हो और कोलाहल हो रहा है।

यहाँ कोलाहल का प्रयोग 'शान्ति' के पश्चात् ही किया गया है वस्तुतः सर्वत्र शान्त हो जाने के बाद ही कोलाहल की ध्वनि और तीव्रतर, तीक्ष्ण प्रतीत होती है-

सिद्धार्थ : ''न किमपि श्रोतुमिच्छामि यशोधरे। अद्यैव प्रव्रज्यायै अनुमतिं ग्रहीतुं महाराजस्य सौधमुपसर्पामि। अद्यैव प्रव्रज्यायै अनु.....।

यशोधरा : (तारस्वरेण) कुत्र प्रयाति कुमारः? कुमार।''[10] (कोलाहल उतिष्ठति)

अश्वखुर ध्वनि

रेडियो रूपक का प्रमुख आधार ध्वनि है लेकिन रचनाकार ने श्रोताओं को मुग्ध करने के अश्वखुर ध्वनि अर्थात् अश्व के चलने पर जो ध्वनि उत्पन्न होती है उसका सजीव चित्रण श्रोताओं के मानस पटल पर उपस्थित किया है -

जब सिद्धार्थ महल, विलास (सांसारिक वस्तुओं का) का त्याग कर देते है और छन्दक को अपने प्रिय अश्व (कन्थक) लाने के लिए कहते है तब उनकी आज्ञानुसार छन्दक 'कन्थक' को लाता है तव अश्व के खुरों की ध्वनि इतनी मधुर सुनाई पड़ती है -

''सिद्धार्थ : छन्दक। अस्मिन् समये किमपि ज्ञोतुं न वांढामि। केवलं तूष्णीको मदीयामाज्ञां पालय। उत्तिष्ठ, त्वरितं मदीयं प्रिय तुरगं कन्थक मानय।

छन्दक : यदाज्ञापयति कुमार :। गच्छामि।''[11]
(अश्वखुर ध्वनय :)

यहाँ पर जब छन्दक 'अश्व' को लेकर आता है तब उस अश्व के तीव्र गति से चलने पर 'ध्वनि' उत्पन्न होती है। यही ध्वनि श्रोताओं के समक्ष 'अश्व' के सजीव चित्र को अंकित कर देती है।

हास्य ध्वनि

ध्वनि रूपकों में ध्वनि रूप में हास्य ध्वनि प्रायः सुनने को मिलती है। हास्य का अर्थ है- हँसना। हास-परिहास,

चुहलबाजी, मित्रमण्डली, बच्चों के क्रीड़ा के समय की प्रफुल्लता का आभास कराने के लिए 'हास्य' ध्वनि की योजना की जाती है। इसके अतिरिक्त विकृत वाक्योच्चारण, जैसे हकलाना या तुतलाने की ध्वनि भी 'हास्य' वातावरण की सृष्टि करती है।

महाभिनिष्क्रमणम् रूपक के प्रथम प्रक्रम में हास्य ध्वनि की सृष्टि प्रफुल्ल आनन्दमय वातावरण का अनुभव कराती है। जब राजा सिद्धार्थ दार्शनिक चिन्तन में डूब जाते है तब शुद्धों धन उनकी उदासी को दूर करने के लिए एवं उनके मन में रतिभाव, विलास, प्रमोद आदि उत्पन्न करने के लिए यशोधरा तथा उनकी सखियों को प्रेरित करते है। यशोधरा सिद्धार्थ से विलास एवं यौवन को स्पष्ट करते हुए कहती है-''वकुलपुष्पं परितो भ्रमरसंहति पश्यतु भवान्। वकुलपादपस्योपरि कोकिलकूजित शृणोतु भवान् इदमेव प्रमोदस्य स्वरूपम्।''[12] (हास्यम्)

अन्यत्र भी जब यशोधरा की सखियाँ यशोधरा और सिद्धार्थ को एक साथ क्रीड़ोद्यान मे प्रवेश करती हुई देखती है तब एक सखी दूसरी सखी से सिद्धार्थ का अभिवादन करती हुई तथा व्यंग्य रूप में स्वयं पर दृष्टिपात करने के लिए हँसती हुई कहती है-''महद् आश्चर्य कुमार। अद्य नूनं यशोधराया जल केलिः कुमारमि यदवधि स्नान वापिकायामवरूद्धवती अभिवादये कुमार, दृष्टिपातः क्रियताम अस्मिन्नपि जन.....।''[13](हास्य ध्वनि :)

यहाँ रूपककार के द्वारा हास्य ध्वनि का निर्देश किया गया है। यशोधरा और कृष्ण के क्रीड़ोद्यान् मे प्रवेश करने पर 'हास' का वातावरण तैयार नहीं होता जितना कि सखियों के आपस में हास-परिहास करने पर विशेष ध्वनि में जो प्रफुल्लता (आनन्द) की अनुभूति होती है वही अनुभति श्रोता के समक्ष सम्पूर्ण दृश्य अंकित कर देती है।

वाहन ध्वनि

रेडियो रूपक श्रव्य रूपक है इसमें किसी भी व्यक्ति, वस्तु, विशेष को देखा नहीं जा सकता है यहाँ तक किसी वाहन की गति का मानस चित्र बनाने के लिए विभिन्न ध्वनियों का माध्यम लिया जाता है। यथा- वाहन के चलने से पूर्व की ध्वनि मन्द, मध्य और तीव्र गति को अनुभव कराने की ध्वनि, वाहन के रुकने की ध्वनि आदि।

'महाभिनिष्क्रमणम्' में रथ ध्वनि का उदाहरण देखने को मिलता है- रथ ध्वनि के अन्तर्गत रथ के चलने पर मन्द एवं तीव्र ध्वनि का उत्पन्न होना आवेगपूर्वक रथ का चलना आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

जब सिद्धार्थ नगर भ्रमण के लिए अपने रथ पर आरूह हो जाते है तब उनके रथ शोभायमान हो रहे है। उनकी शोभा को देखकर एक सखी दूसरी सखी से कह रही है देखो यशोधरा रथ के चारो ओर की शोभा को देखो.....

''दृश्यतां यशोधरे रथस्य चत्वारोप्यश्वाः प्रकीर्यमाण पाटलाकुसुमैररूणवर्णाः भास्कर तुरंगाननुहरन्ति।''[14](रथ ध्वनि पृष्ठतः प्रचलतः)

रेडियो रूपक में 'रथ' के दृश्य को दिखाया नहीं जा सकता इसलिए रूपककार ने 'रथ' की ध्वनि के माध्यम से श्रोताओं को 'रथ' का आभास कराकर उनके समक्ष एक दृश्य उपस्थित कर दिया है।

क्रन्दन ध्वनि

सिद्धार्थ मार्ग में जब मृत व्यक्ति को देखते है तब विलाप करते हुये दिखाई पड़ते हैं और उस रहस्य को जानने की इच्छा सिद्धार्थ के मन में उत्पन्न होती है कि तब वह सारथि से पूछते है कि यह कौन है यह क्यों रो रहे है-

संग्राहक : पश्यकश्चन् अन्योपि राजकुमारों नगर यात्रायै समागच्छति। पश्य वहवो जनास्तत्पृष्ठतः समायान्ति। अग्रे चत्वारो मनुजस्तास्यासन्दी वहन्ति। परमेते किमिति रूदन्ति? नावगच्छामि।

संग्राहकः नायं कश्चनापि कुमार।[15](क्रन्दन ध्वनि-रूतिष्ठिति)

यहाँ पर 'परमेते किमिति रूदन्ति' रूदन्ति शब्द को स्पष्ट करने के लिए और शोकाकुल वातावरण की सृष्टि करने के लिए क्रन्दन की ध्वनि का प्रयोग किया गया है। अन्यथा केवल संवाद में 'रूदन्ति' शब्द का प्रयोग शोकाकुल वातावरण की सृष्टि नहीं कर सकता था।

छेदन ध्वनि

'नाट्यवल्लरी' में छेदन ध्वनि का प्रयोग भी किया गया है। छेदन का अर्थ है- काटना। किसी वस्तु को काटने पर जो ध्वनि उत्पन्न होती है वही छेदन ध्वनि कहलाती है। 'नाट्यवल्लरी' में इसका उदाहरण प्राप्त होता है- ''अधुना मुकुटं न धारयिष्यामि। देहि में खडगम्। एवम् मुकटं खडगेन छिनदमि।''[16] (छेदन ध्वनि :)

जब सिद्धार्थ मुकुट को धारण न कर उसे खडग से छेद देते हैं तभी विशेष ध्वनि उत्पन्न होती है और श्रोताओं के समक्ष सजीव दृश्य उपस्थित हो जाता है।

अग्निशिखानां ध्वनि

रचनाकार ने 'धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्' नामक रूपक में अग्नि का वर्णन किया है जब धर्मानन्द पण्डित के घर

में आग लग जाती है तब पण्डित कहते हैं- ''अनर्थ सज्जातः। भीषणाघग्निः। अरे वराकस्य धर्मानंद पण्डितस्य गृहे किमिदं संकटमापन्नम्।''[17](अग्निशिखानां ध्वनिः)

कुक्कुर ध्वनि

रचनाकार ने 'धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्' नामक रूपक में 'शून्य रात्रि' का वर्णन करते हुये कहा है- ''अहो भयावहा रात्रिः। सूची भेद्योघ्न्धकारः। कुत्र गच्छामि? अरे अत्र तु अध्यापकस्य सत्यव्रतस्य गृहम?'' (कुक्कुर ध्वनि श्रुयन्ते)

यहाँ पर कुक्कुर अर्थात् 'कुत्ते के भौंकने' की ध्वनि से, न केवल रात्रि का अनुभव होता है अपितु रात्रि का सन्नाटा और अंधकार की भयावहता का प्रत्यक्षीकरण भी हो जाता है।

भ्रमरगुंजन ध्वनि

'महाभिनिष्क्रमणम्' में भ्रमर गुंजन ध्वनि स्पष्ट परिलक्षित होती है जब सिद्धार्थ दार्शनिक चिन्तन में डूब जाते हैं तब यशोधरा उनकी उदासी को दूर करने के लिए प्रमोद का स्वरूप बताती हुई उद्यान में कहती है- वकुलपुष्पं परितो भ्रमर संहति पश्यतु भवान्। वकुलपादपस्योपरि को किलकूजितं शृणोतु भवान्।[18] (भ्रमरगुंजन ध्वनि)

भ्रमर गुंजन की ध्वनि का प्रयोग श्रोताओं के समक्ष उद्यान का चित्र अंकित कर देता है।

इसके अतिरिक्त 'प्रियदर्शिका' नामक रूपक में- 'आरणिका गच्छ त्वम्। न त्वयाघ्संबद्धप्रलापिन्या भाषिष्ये'।[19]

कपाट ध्वनि

कपाट ध्वनि का भी रूपककार ने प्रयोग किया है। इसका उदाहरण 'कविताया मूल्यम्' में देखने को मिलता है - जब धनराज अपने घर आकर दरवाज़ा खटखटाते है तो उस समय खट्ट की जो ध्वनि उत्पन्न होती है उसी समय का वर्णन रचनाकार ने किया है -

धनराज : अपि कविवर्याः भारविमहोदयाः भवने विघन्ते?

शुभा : (दरवाजा खुलने की ध्वनि) ननु को भवान्।[20]

द्वार पर किसी व्यक्ति को दर्शाने के लिए रूपककार ने 'खट्ट' की ध्वनि का प्रयोग किया है।

द्वारि आकारण ध्वनि

द्वारि आकारण ध्वनि में द्वार पर किसी के व्यक्ति के आने पर जो पद्चाप की ध्वनि होती है। इसी ध्वनि का प्रयोग रूपककार ने नाट्यवल्लरी में किया है।

'कविताया मूल्यम' में जब भारवि धनराज से मिलने के लिए उनके घर आते है जब उनके पदचाप की जो ध्वनि हो रही है वह अत्यधिक आनन्द देने वाली है।

धनराज : ओम् ओम् श्रेष्ठी रनवाहरदत्त इत्यथिधास्यते मत्पुत्रः।(द्वारि आकारण ध्वनिः)

अरे कश्चिद् द्वारि समायातोघस्ति। जयराज, ज्ञारातां कोघ्स्मद्दर्शनार्थी तिष्ठति?[21]

संदर्भ-

1. दशरूपक, 1/8
2. वही
3. दशरूपक, 1/9
4. दशरूपक, पृ. 7
5. संस्कृत शब्दकोश, पृ. 589
6. दशरूपक, 1/8
7. रेडियो नाट्य लेखन, पृ. 9
8. रेडियो नाट्य शिल्प, पृ. 15
9. संस्कृत नाट्य बल्लरी-नाट्य शास्त्रवतार, पृ. 4
10. महाभिनिष्क्रमणम् तृतीय प्रक्रम, पृ. 12
11. महाभिनिष्क्रमणम् चतुर्थ प्रक्रम, पृ. 14
12. महाभिनिष्क्रमणम् प्रथम प्रक्रम, पृ. 08
13. वही, पृ. 07
14. महाभिनिष्क्रमणम् द्वितीय प्रक्रम, पृ. 09
15. वही, पृ. 10
16. महाभिनिष्क्रमणम् पंचम प्रक्रम, पृ. 15
17. धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्, षष्ठ प्रक्रम, पृ. 62
18. महाभिनिष्क्रमणम् प्रथम प्रक्रम, पृ. 8
19. प्रियदर्शिका, पृ. 77
20. कविताया मूल्यम, पृ. 71
21. वही, पृ. 66

संस्कृत विभाग (कला संकाय)दयालबाग शिक्षण संस्थान, आगरा

धर्मशास्त्रीय वर्ण व्यवस्था एवं सामाजिक प्रबन्धन

पूजा गौतम
प्रो. मीरा शर्मा

प्रबन्धन एक ऐसी व्यापक प्रक्रिया है जो व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक पक्ष से सम्बन्ध रखती है। प्रत्येक व्यक्ति इस समग्र समाज की एक लघुतम किन्तु महत्त्वपूर्ण इकाई के रूप में कार्य करता है तथा प्रत्येक व्यक्ति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से समाज की व्यवस्था को प्रभावित करता है। अतः समाज की इसी व्यवस्था को हम सामाजिक प्रबन्धन के परिप्रेक्ष्य में स्वीकार करते हैं जिसकी दृढ़ आधारशिला हमें धर्मशास्त्रों, विशेषतः स्मृति ग्रन्थों में प्राप्त होती है। धर्मशास्त्रीय ऋषियों ने तत्कालीन समाज की समस्त परिस्थितियों, आवश्यकताओं व उद्देश्यों को ध्यान में रखकर सामाजिक व्यवस्था के कुशल संचालन हेतु समस्त कारकों का सूक्ष्म निरीक्षण कर समाज के लिये ऐसी नीतियों का निर्धारण किया जिससे सामाजिक क्रियाकलाप तथा व्यवस्था सुचारू रूप से क्रियान्वित हो सके तथा समाज सफल, स्वस्थ व सुचारू रूप से विकास कर सकें।

इसी सामाजिक प्रबन्धन की शृंखला में धर्मशास्त्रीय वर्णव्यवस्था भी एक सतत् प्रयास था।

जो समाज में प्रत्येक व्यक्ति के कार्यात्मक विभाजन से सम्बन्धित था। प्राचीन ऋषियों ने भारत के समाज को निश्चित कर्मों के अनुसार विभिन्न वर्णों में विभाजित किया था। धर्मशास्त्रों का यह विभाजन व्यक्ति की उच्चता, हीनता की दृष्टि से नहीं अपितु व्यक्ति की क्षमतानुसार कर्म एवं व्यवसाय के आधार पर किया था।

किसी भी समाज या राष्ट्र के उन्नयन के लिये जिन प्रमुख मानवीय क्रियाकलापों का होना वाच्छनीय हो सकता है, प्रायः वे सब धर्मशास्त्रीय वर्णाश्रम व्यवस्था में सन्निविष्ट है। इसी वर्णाश्रम व्यवस्था के संकेत हमें धर्मशास्त्रों में प्राप्त हुए है यथा-चत्त्वारो वर्णा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्राः। (वशिष्ट स्मृति, श्लोक 46)

इसी प्रकार विष्णु स्मृति का भी कथन है-ब्राह्मणाः क्षत्रियों वैश्यः शूद्रश्चेति वर्णाश्चत्वारः। (विष्णुस्मृति, सवर्णाश्रम वृति धर्मवर्णनम्, श्लोक 1)

समाज के सावयव स्वरूप को स्वीकार करके ही आचार्य मनु कहते हैं- लोकानां तु विवृद्धयर्थं मुखबाहुरूपादतः।/ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत्।। (मनुस्मृति-1/34)

अर्थात्-लोकवृद्धि के लिये ब्रह्मा ने मुख, बाहु, उर व पैर से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र इन चारों वर्णों की सृष्टि की। इस प्रकार आचार्य मनु, याज्ञवलक्यादि जिन आचार्यों ने समाज को चार वर्णों में विभाजित स्वीकार किया उनका मानना था कि प्रथम विराट पुरुष के विभिन्न अंगों जिन चार वर्णों की उत्पत्ति हुई है वह इस तथ्य को व्यक्त करती है कि जिस प्रकार शरीर का एक अंग दूसरे अंग का पूरक है उसी प्रकार वर्णव्यवस्था के ये चारों वर्ण भी अपने-अपने कर्त्तव्यों से सामाजिक प्रबन्धन के पूरक हैं। ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मणों की उत्पत्ति का कारण उनका बोलना व लोगों को शिक्षित करना है। इसी सन्दर्भ में आचार्य वशिष्ट का कथन है-षट्कर्माणि ब्राह्मणस्य। स्वाध्यायाध्ययनध्यापनं यजनं याजनं दानं प्रतिग्रहश्चेति।। वशि. स्मृ. (2/19-20)

इसी प्रकार आचार्य गौतम ने भी ब्राह्मणों के कर्म के विषय में कहा है-द्विजातीनां मध्ययमिज्यादानम्। ब्राह्मणरयाधिकाः प्रवचनमं याजनं प्रतिग्रहाः।। गौतम स्मृति (10/1-2)

इस प्रकार प्राचीन भारतीय संस्कृति में विद्या, साधना, धर्म व आचार का आध्यात्मिक महत्त्व होने के कारण उनका संरक्षण और प्रचार करने वाला एक पृथक् वर्ग बना जिसे ब्राह्मण वर्ग का नाम मिला। इस प्रकार अध्ययन, अध्यापन, यजन-याजन, दान, प्रतिग्रह को निष्ठापूर्वक पालन कर ज्ञान व सदाचार की आध्यात्मिक प्रतिष्ठा कर समाज का सही नेतृत्त्व करना ब्राह्मण वर्ग का कर्त्तव्य क्षेत्र रहा है।

ब्रह्मा की भुजाओं से क्षत्रियों की उत्पत्ति होने का कारण उसकी शक्ति को माना है भुजाएँ शक्ति की सूचक है अतः भुजाओं का कारण शासन संचालन तथा शस्त्र धारण कर समाज की रक्षा करना है। इस प्रकार समाज की सुरक्षा का कार्य क्षत्रिय वर्ग का था-प्रजानां रक्षणं दानम् इजयाध्ययनमेच्। /विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समादिशत्।। मनु स्मृति (2/89) आचार्य वशिष्ट का कथन भी इस ओर संकेत करता है-अध्ययनं यजने दानं च शस्त्रैण च प्रजापालनं सर्वधर्मस्तेन जीवेत्। (वशि. स्मृ.-2/22)

अतः समाज में क्षत्रिय की अभिव्यक्ति जिन विभिन्न रूपों में होती है उनमें उसका समाज से सम्बन्ध, उसकी विवेक, बुद्धि, कौशल के मध्य धैर्यपूर्वक, शक्ति के साथ और सफलतापूर्वक चलने की व्यापक कसौटी है। अतः क्षत्रिय अपने साहसपूर्ण कार्य करने की क्षमता, अपने पराक्रम व बाहुबल से समाज को सुरक्षा प्रदान करते हैं तथा समाज में सुनियन्त्रित शासन की स्थापना ही क्षत्रिय वर्ग का प्रमुख उत्तरदायित्त्व रहा था। इसी प्रकार तीसरा वैश्य वर्ग है जिसकी उत्पत्ति उदर या जंघाओं से मानी गई है उसका कारण वैश्य वर्ग द्वारा समाज की उदरपूर्ति करना रहा है, धनार्जन करना ही वैश्य वर्ग का कार्य रहा है, पवित्र कर्मों के द्वारा धनार्जन कर समाज की उदरपूर्ती करना है।

वैश्य वर्ग के सन्दर्भ में आचार्य याज्ञवलक्य का कथन है-कुसीद कृषि वाणिज्य पशुपाल्यं विशः स्मृतम्। (याज्ञ. 1/119)

वैश्यों के कार्यभार के विषय में आचार्य मनु का कहना है-पशूनां रक्षणं दानम् इज्याध्ययनमेव च।/वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषि मेव च।। (मनु. 1/89)

इस प्रकार कृषि, वाणिज्य व पशुपालन द्वारा राष्ट्र को आर्थिक सम्पन्नता प्रदान करना ही वैश्य वर्ग का प्रमुख कर्त्तव्य था। समाज के पोषण कर्त्ता के रूप में वैश्य वर्ण का प्रमुख स्थान था तथा सामाजिक उदरपोषण कर समाज की जठराग्नि को शान्त करते हुए वैश्य वर्ण सामाजिक चक्र की धुरी को अपने कंधों पर लिये हुए हैं।

शूद्र वर्णव्यवस्था का अन्तिम किन्तु महत्त्वपूर्ण स्तम्भ है जिनकी उत्पत्ति ब्रह्मा के पैरों से मानी गई है। इसका कारण यह है कि सभी वर्णों की सेवा का भार शूद्र वर्ण पर था तो जिस प्रकार पैर समस्त शरीर के भार को संभालते है इसी प्रकार शूद्र वर्ग भी अपनी सेवा द्वारा समाज के भार का वहन करता था। आचार्य मनु का इसी सन्दर्भ में कथन है-एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।/एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया।। मनु (1/91)

इस प्रकार विराट पुरुष के विभिन्न अंगों से चार वर्णों की उत्पत्ति इस तथ्य को व्यक्त करती है कि चारों वर्णों की भिन्न-भिन्न स्वभागवत विशेताएँ थी, सबके पृथक्-पृथक् गुण व कर्म थे किन्तु ये सभी वर्ण एक ही विराट पुरुष रूपी समाज के भाग होने के कारण पारस्परिक आत्मनिर्भर थे तथा जिस प्रकार शरीर के किसी भी एक अंग के बिना दूसरा अंग सही रूप में कार्य नहीं कर सकता ठीक उसी प्रकार वर्णव्यवस्था के अभाव में तत्कालीन समाज सही रूप में संचालित नहीं हो सकता था तथा उस समय ऋषियों ने सामाजिक स्तरीकरण की इस व्यवस्था के माध्यम से समाज का मनोवैज्ञानिक आधार पर कार्यात्मक विभाजन किया था। इस व्यवस्था के द्वारा हिन्दू समाज के संगठन, संरक्षण, संचालन, विकास एवं प्रगति का आधार बनाया गया क्योंकि सैद्धान्तिक दृष्टि से वर्णव्यवस्था शक्तियों का। सामाजिक श्रम का और सामाजिक कर्त्तव्यों का सर्वाधिक वैज्ञानिक व उपयोगी विभाजन है जिसका श्रेय मुख्यतः हमारी संस्कृति एवं सभ्यता की रक्षा करने वाले धर्मग्रन्थकारों को है जिन्होंने अपने महत्त्वपूर्ण चिन्तन एवं प्रज्ञा के आधार पर इस प्रकार की महत्त्वपूर्ण वर्ण व्यवस्था को प्रारम्भ किया व सामाजिक संस्तरण, स्तरीकरण व प्रबन्धन की व्यवस्था को बल देकर सामाजिक दशा में प्रगतिशील संजीवनी का आवरण दिया है।

इस प्रकार धर्मशास्त्रों में वर्ण व्यवस्था के माध्यम से एक कुशल सामाजिक प्रबन्धन को आधारशिला दी तथा समाज के प्रत्येक मनुष्य की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक क्षमता के क्रमिक विकास के रूप में समाज को संगठित करने व प्रबन्धित करने का सफल प्रयास किया। वर्तमान समाज में भी बढ़ रही सामाजिक कुरीतियों, अनैतिकताओं व अराजकताओं के क्षेत्र में धर्मशास्त्रीय सामाजिक प्रबन्धन एक प्रेरणाप्रद स्रोत है जिसमें सभी व्यक्तियों को अपने-अपने कर्त्तव्य व क्षमताओं के सदुपयोग के लिये प्रेरित कर समाज को कुशल रूप से प्रबन्धित किया जा सकता है।

शोधार्थिनी- संस्कृत विभाग (कला संकाय), दयालबाग शिक्षण संस्थान, आगरा

कहानीकार चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'

राजकौर

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी द्विवेदी युग के प्रतिनिधि लेखक तथा सशक्त कथाकार रहे हैं। यह वह समय था जब गद्य और पद्य आधुनिक रूप में ढल रहा था। कहनी नया रूप ले रही थी। ऐसे समय में गुलेरी जी तत्कालीन लेखन से ऊपर उठकर जीवन के गंभीर और मार्मिक पक्षों का उद्घाटन करते प्रतीत होते हैं। आगे चलकर जो परम्परा बनी और हिन्दी कहानी की मुख्यधारा बनी, उसके बीज इन्होंने बोए थे। इन्होंने 'घण्टाघर', 'धर्मपरायण रींछ', 'सुखमय-जीवन', 'बुद्धू का कांटा', 'उसने कहा था' तथा 'हीरे का हीरा'(अधूरी) कहानियाँ लिखीं।[1]

'घण्टाघर' इनकी पहली कहानी थी। यह कहानी ख्याति प्राप्त न कर सकी, लेकिन फिर भी गुलेरी जी के कहानीकार व्यक्तित्व के निर्माण में इसका महत्वपूर्ण योगदान है। कहानी के पूवार्द्ध में सहज प्रवाह, औत्सुक्य तथा वर्णन-कौशल और उत्तरार्द्ध में विचार तत्त्व की प्रधानता है। यह रचना कहानीकार गुलेरी के उदय की सूचक है।[2] 'घण्टाघर' कहानी में बताया गया है कि समाज में रूढ़ियाँ कैसे पनपती हैं। सामाजिक अंधानुकरण, मंदिरों में देवताओं के नाम पर लूट-खसोट, व्याभिचार और आडम्बरों का व्यंग्यपूर्ण ढंग से सुंदर वर्णन किया गया है।

'धर्मपरायण रींछ' कहानी में पंडित चन्द्रधर भारतीय संस्कृति के मूल्य, अतिथि सत्कार को पूरी ताकत के साथ सामने रखते हैं। यह कहानी चार खण्डों में विभाजित है। कहानी को इस तरह खण्डों में लिखने की इनकी प्रवृत्ति कथाओं में भी स्पष्ट देखने को मिलती है। कहानी में इन्होंने अनेक भावात्मक स्थितियों का मार्मिक चित्रण किया है। भाषा में अनूठी गति तथा संवादात्मकता है। नाटकीयता इसके शिल्प की विशेषता है।

'सुखमय जीवन' इनकी एक महत्त्वपूर्ण कहानी है। कहानी के नायक जय देवशरण वर्मा ने छात्रावस्था की देहरी लांघते हुए, वैवाहिक जीवन के व्यवहारिक अनुभव से बेदखल रहकर भी समाज में सुखी ग्रस्थ जीवन जीने के नुस्खों वाली 'सुखमय जीवन' नामक पुस्तक लिख डाली है, जिससे बाबू गुलाबराय वर्मा तथा उनकी बेटी कमला बहुत प्रभावित है, पर कमला की माँ अपने अनुभव से इस लेखक के कोरे किताबी ज्ञान को भांप गई हैं। इस कहानी में प्रेम का उदय प्रथम दृष्टि में होता है। नायिका कमला को देखकर नायिका जयदेवशरण मुग्ध हो जाता है। जयदेवशरण वर्मा एकांत पाकर जब कमला का हाथ पकड़कर प्रेम निवेदन करता है तो कमला उसे प्रताड़ित करते हुए यों अपना रोष प्रकट करती है-''आपको ऐसी बातें कहते लज्जा नहीं आती? 'सुखमय जीवन' का लेखक और ऐसा घृणित चरित्र। चुल्लू भर पानी में डूब मरो। अपना काला मुँह मुझे मत दिखाओं।''[3]

जयदेवशरण वर्मा सारे रहस्य पर से परदा हटाता हुआ झुंझलाकर दो टूक शब्दों में कह उठता है-''भाड़ में जाय 'सुखमय जीवन'। उसी के मारे नाको दम है!! 'सुखमय जीवन' के कर्ता ने क्या यह शपथ खा ली है कि जन्मभर क्वारा ही रहे? क्या उसमें प्रेम भाव नहीं हो सकता। क्या उसमें हृदय नहीं होता?''[4]

कमला की माँ 'सुखमय जीवन' को 'कोरी गप्पों की पोथी' मानती है। इस तरह गुलेरी जी ने कहानी में यह दिखाना चाहा है कि नारी को सत्य की पहचान होती है। पुरुष को जीवन के सत्य से परिचित कराकर, वह उसका मार्गदर्शन कर सकती है। इसी कारण इन्होंने जयदेवशरण की इन पंक्तियों के साथ कहानी के उद्देश्य को व्यंजित किया है-'चाचा जी, उस निकम्मी पोथी का नाम मत लीजिए। बेशक, कमला की माँ सच्ची है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक पहचान सकती है कि कौन अनुभव की बातें कह रहा है और कौन गप्पे हांक रहा है। आपकी आज्ञा हो, तो कमला और मैं दोनों सच्चे सुखमय जीवन का आरंभ करें। दस वर्ष पीछे में जो पोथी लिखूँगा, उसमें किताबी बातें न होंगी, केवल अनुभव की बातें होगी। 'सुखमय जीवन' कहानी में मात्र किताबी ज्ञान के बल पर, अनुभव की आंच पर तपे बिना साहित्य लिखने वालों और हर पुस्तक को बिना विवेचन किए ब्रह्म वाक्य की तरह लेने वालों का वर्णन किया गया है। इस दृष्टि से यह आज भी समाज पर एक सशक्त व्यंग्य है।

'बुद्धू का कांटा' श्री चन्द्रधर की एक अन्य महत्त्वपूर्ण

कहानी है। इसका रचनाकाल 1911 से 1915 ई. के बीच माना गया है। 'बुद्धू का कांटा' सामाजिक कहानी है, लेकिन समस्त सामाजिक मान्यताओं और प्रश्नों के बीच इस कहानी की संवेदना प्रेम और कर्तव्य को लेकर उभरी है। इस कहानी में प्रेम का उदय प्रथम दृष्टि में नहीं होता बल्कि साहचर्य के कारण कुछ समय पश्चात होता है।

कहानी के चरित्र यथार्थ है। प्रेम तथा स्त्री-सम्पर्क की दिशा में नायक में हीन ग्रंथि है। फलस्वरूप नायिका को पहल करनी पड़ती है। इस कहानी में पहले कर्तव्य आता है, फिर प्रेम। रघुनाथ प्रयाग से पढ़कर आया युवक है, जो गाँव के तौर-तरीकों से बिल्कुल अनभिज्ञ है। वह लोटे में फंदा डालकर कुएँ में पानी खींचता है। गाँव की स्त्रियों से बातें करते समय पसीना-पसीना हो जाता है। भागवती एक चुलबुली और बड़ बोली किशोरी है। वह रघुनाथ के बुद्धूपन पर फब्तियाँ कसती है। रघुनाथ को संसार का कुछ भी अनुभव नहीं है। ज्यों-ज्यों उसका सांसारिक अनुभव बढ़ता जाता है उसका संकोच दूर होता जाता है और वह संसार व्यवहार में परिपक्व होता जाता है। 'बुद्धू का कांटा' कहानी में इलाही की व्यथा-कथा वाला प्रसंग भी सामाजिक संवेदना की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। वह कहता है-''कचहरियाँ गरीबों के लिए नहीं हैं, बा' छा, वे तो सेठों के लिए हैं। गरीबों की फरियाद सुनने वाला सुनता है।''[5]

इलाही का यह कथन सामंती वातावरण में शोषितों के शोषण की त्रासद घटनाओं का प्रतिफलन है। चन्द्रधर शर्मा ने इलाही के प्रसंग को उठाकर अपने समय के उपन्यासकारों को, जो तिलस्मी एवं ऐय्यारी किस्म के उपन्यास लिख रहे थे, इन शब्दों में प्रबोध करने का प्रयास किया था-''कितने गरीबों का इतिहास ऐसी चित्त घटनाओं की धूप-छाया से भरा हुआ है, पर हम लोग प्रकृति के इन सच्चे चित्रों को न देखकर उपन्यासों की मृगतृष्णा में चमत्कार ढूंढ़ते हैं।''

'बुद्धू का कांटा' कहानी में गुलेरी ने सामाजिक बुराईयों-दहेज प्रथा, अनमेल विवाह, आडम्बरप्रियता, रूढ़िवादिता, ज्योतिष का पाखण्ड, पर्दा-प्रथा, शोषण तथा जीवन मूल्यों के विघटन की व्यंजना करके एक समाज सुधारक की दृष्टि भी दी है।

'उसने कहा था' कहानी गुलेरी की कालजयी कृति है। यह कहानी प्रेम की आध्यात्मिक अनुभूति की-सी कहानी है। कहानी के शुरू में अमृतसर के भीड़ भरे बाज़ार में बारह वर्ष का लड़का और आठ वर्ष की लड़की मिलते हैं। दोनों में सहज आकर्षण उत्पन्न होता है। बातों ही बातों में लड़का-लड़की से पूछता है-क्या तेरी कुड़माई हो गई? लड़की की ओर से सहज 'धत्' की आवाज़ आती है और यह कहकर वह भाग जाती है, लेकिन एक दिन लड़की 'धत्' कहकर भागने की बजाय कहती है-हाँ, कल हो गई, देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा सालू। यह सुनकर लड़के की बड़ी विचित्र हालत हो जाती है। इस प्रकार दो अनुरागी मनों के सहज-सरल प्रेम-बंधन टूट गए। बहुत व्यस्त जीवन के मध्यभाग में पुनः अचानक दोनों का मिलन होता है। दोनों के जीवन की अपनी-अपनी समस्याएँ है। सूबेदारनी लहनासिंह को पहचान लेती है। 25 वर्ष पहले की घटना, उनका मिलन, उनका सहज निश्छल प्रेम आज भी प्रेमिका के अंतर्मन में छिपा है। लहना सिंह और सूबेदारनी के बीच का प्रेम पूर्णतः अशरीरी है। यह अशरीरी प्रेम भी संकेतों से व्यंजित हुआ है, उसमें मुखरता बिल्कुल नहीं है। यह निश्छल प्रेम, त्याग और कर्त्तव्य बनकर लहनासिंह का आदर्श बन जाता है। सूबेदारनी के अंतर्मन में लहनासिंह के प्रति अखण्ड विश्वास है, स्नेह है, वह कहती है-''मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ।.....एक बेटा है। फौज में भर्ती हुए इसे एक ही बरस हुआ। इसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया।'' सूबेदारनी रोने लगी, 'अब दोनों लड़ाई में जा रहे हैं।' मेरे भाग। तुम्हें याद है, एक दिन तांगे वाले का घोड़ा, दही वाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाए थे। आप घोड़ों की लातों में चले गए थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे में आंचल पसारती हूँ।[6]

लहनासिंह अपना जीवन उस निश्छल शाश्वत प्रेम को समर्पित करता है जो उसके जीवन में पच्चीस वर्ष पहले सहज प्रस्फुटित हुआ था। मन की वह प्रथम भावना अचेतन में रहकर उसके संपूर्ण जीवन को गति बनकर संचालित करती है। वह उसके आत्मोत्सर्ग, त्याग, बलिदान का कारण बनती है। इस कहानी में यथार्थवाद है, मर्यादा है, भावुकता है और प्रेम का स्वर्गीय लोकोत्तर रूप है।

'हीरे का हीरा' पण्डित चन्द्रधर की अधूरी कहानी है। 'इसकी खोज डॉ. छोटाराम कुम्हार ने सन् 1980-81 में गुलेरी जी के भाई पं. जगधर गुलेरी के घर उपलब्ध गुलेरी जी के कागज़ पत्रों से की थी।'[7] 'हीरे का हीरा' की मूल संवेदना लहनासिंह के जीवित लौटने, बूढ़ी माँ, विरहविदग्ध पत्नी से मिलन होने तथा पुत्र हीरा के मन के औत्सुक्य से भरी है। लहनासिंह के चेहरे पर अपने गाँव पहुँचकर, घर-परिवार के लोगों से स्नेहपूर्वक मिलने की उमंग उसके हृदय का मुख्य स्रोत

शेष पृ. 72 पर .....

अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में हिंदी

डॉ. तसनीम पटेल

भारत और चीन के संबंध मात्र दो राष्ट्रों के संबंध नहीं है, बल्कि दो संस्कृतियों के संबंध हैं। विगत् दो हज़ार वर्षों से भी अधिक समय से दोनो देशों की जनता के मध्य संस्कृति, धर्म, दर्शन, विज्ञान और जीवन के विविध क्षेत्रों में हुए परस्पर आदान-प्रदान ने दोनों देशों की एक विशिष्ट पहचान बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारत और चीन के मध्य इस 'सांस्कृतिक सेतु' के निर्माण में हिंदी भाषा ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। भाषा जो कि अंतर्मन की अभिव्यक्ति और भावनाओं का एक साधन है। यह मात्र स्व के अस्तित्त्व का बोध ही नहीं कराती बल्कि व्यक्तियों, समाजों और राष्ट्रों को परस्पर जोड़ती है। राष्ट्रों के मध्य परस्पर मैत्री के विकास में भाषा का स्थान सर्वोपरि होता है।

चीन में हिंदी और संस्कृत के विषय पर जब विचार किया जाता है, तो कई प्रश्न उत्पन्न होना स्वाभाविक है जैसे-चीन में संस्कृत, पालि, हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं (बंगाली, उर्दू, तमिल आदि) के आदि पढ़ने के लिए चीनी नागरिक उत्साह के साथ अध्ययन करते है। भारत और चीन के मध्यम परस्पर अध्ययन की परंपरा दो हज़ार वर्षों से भी अधिक प्राचीन है। चीन लोक-गणराज्य की स्थापना के बाद पेईचिड विश्वविद्यालय (पेता) में पूर्वी भाषा अध्ययन विभाग की स्थापना की गई। प्रो. ची श्येनलिन इस विभाग के संस्थापक एवं विभागाध्यक्ष ने चीन में संस्कृत, पालि और हिंदी भाषा के अध्ययन की परंपरा को न सिर्फ निरंतर बनाए रखने में बल्कि इसे और अधिक विकसित कर मजबूत आधार प्रदान किए जाने में अपना अपूर्व योगदान दिया। यह प्रो. ची की ही योजनाओं एवं भाषाएँ फल-फूल रही है। हिंदी भाषा में प्रथम स्नातक विद्यार्थियों में ली चुङ ई, श्ये वाङ फान, लीन फूची, चिन हान, स्व ल्यू क्वोनात हैं। 1989 में पेइचिङ विश्वविद्यालय से हिंदी में स्नातक हुए चीनी विद्यार्थियों की संख्या लगभग 400 से अधिक थी आज यह संख्या हज़ारों हैं।

हिंदी सही अर्थों में स्नेह, सौहार्द सहिष्णुता, भाइचारे की विश्व भाषा बनी।

मॉरिशस

भारत से भोजपुरी हिंदी बोलने वाले लोग अधिक संख्या में हैं। मॉरिशस की मूलभाषा क्रियोली है। फ्रेंच का प्रभाव भी इस देश पर है। मॉरिशस में रहने वाले भारतीय निवासियों के नाम भी हिंदी प्रदेश के भोजपुर की तरह हैं। यहाँ की हिंदी का स्वतंत्र रूप है इसलिए इसे हम मॉरिशसी हिंदी कहते हैं। जैसे कुछ संज्ञाओं में केवल पुल्लिग का प्रयोग होता है। उदाहरण छोकड़ा (लड़का) छोकड़ी (लड़की) हिंदुस्तानी, आर्य पत्रिका, आर्योदय, सनातन धर्म, आर्यवीर अनुराग, बालसखा आदि।

फ़ीजी देश

फ़ीजी देश में तीन लाख से अधिक लोग हिंदी भाषा-भाषी है। यहाँ की हिंदी में भोजपुरी, अवधी तथा अंग्रेज़ी के तत्त्व मिलते हैं। डॉ. भोलानाथ तिवारी के मतानुसार फ़ीजी हिंदी में साहबी हिंदी के तत्त्व हैं। जैसे ऊ लोगन जाए मँगता। जोगिंदर सिंह को फ़ीजा का प्रेमचंद कहा जाता है।

सूरीनाम हिंदी

सूरीनाम दक्षिण अमेरिका का एक छोटा-सा देश है। सूरीनाम में लगभग चार लाख लोग रहते हैं। जिनमें आधे भारतवंशी हैं, जो हिंदी भाषी हैं। सूरीनाम में सातवाँ अंतर्राष्ट्रीय रामायण संमेलन 1900 में संपन्न हुआ था। सूरीनाम हिंदी परिषद्, जयप्रकाश हिंदी संस्थान जैसी संस्थाएँ यहाँ पर हिंदी का कार्य कर रही है।

त्रिनिदाद

वेस्टइंडीज के त्रिनिदाद और टोबैगो द्वीपों में भारतवंशी लोग रहते हैं। इनकी आबादी पंद्रह लाख है। यहाँ की हिंदी पर अंग्रेज़ी का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। त्रिनिदादी हिंदी में त वर्ग ट वर्ग में परिवर्तित हो जाता है जैसे तुम * टुम दाता * डाटा। यहाँ से हिंदी की कई पत्र-पत्रिकाएँ निकलती है।

अफ्रीकी

नाताल, ट्रांसवाल, केप, दक्षिण अफ्रीका के इन राज्यों में हिंदी मातृभाषी लोग रहते हैं। इनकी संख्या एक लाख से अधिक है। यहाँ बसे हुए भारतीय भोजपुर और गुजरात के हैं। श्रीमती उषादेवी शुक्ला उदबन विश्वविद्यालय में हिंदी की प्रोफेसर पद पर कार्यरत रहीं।

इंग्लैंड :

दोनों देशों में राजनीतिक और व्यापारिक संबंध रहे हैं। लगभग डेढ़ सौ साल तक भारत पर इनका शासन रहा जिस तरह भारत इंग्लैंड से प्रभावित हुआ है उसी तरह इंग्लैंड भी भारत के प्रभाव से बच नहीं पाया। भाषा को लेकर हम यह विचार करें तो हम पाएँगे कि इंग्लैंड हिंदी का गढ़ है। लंदन और कैंब्रिज विश्व विद्यालयों में हिंदी का अध्ययन-अध्यापन अनुसंधान की गतिविधियाँ तेज़ हैं। भ्रमरगीत और रास पंचाध्यायी का अंग्रेज़ी में अनुवाद हुआ।

इटली

इटली देश का श्रीमती मारिया डी. एंजालीस ने इतालवी भाषा में हिंदी-ग्रामर की रचना कर हिंदी के प्रति लोगों को आकृष्ट किया है। स्तेफनो पियानो ने भारतीय पुराण साहित्य पर अनुसंधान किया है। इन्होंने हिंदी इतालवी और इतालवी हिंदी से शब्द कोश तैयार किया है।

अमेरिका

अमेरिका के लगभग 30 विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्ययन होता है। अमेरिका के चारों कोनों में हिंदी का बोलबाला है। मायकेल शोपिरों ने हिंदी साहित्य का इतिहास तैयार किया है। डॉ. चालर्स व्हाईट, डॉ. लिन्डा बेस ने भारतविद् के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त की है। अमेरिका से हिंदी-पत्र पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होती हैं। आकाशवाणी से भी हिंदी कार्यक्रम प्रसारित होते हैं।

फ्रांस

गार्सा - द - तासी पेरिस के आधुनिक पूर्वी भाषाओं के संस्थान के प्राध्यापक थे। उन्होंने हिंदुई साहित्य का इतिहास लिखा जो इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ था। वे हिंदी व्याकरण के शिक्षक थे। उन्होंने हिंदुस्तानी, खड़ी बोली और ब्रज से फ्रांसीसी भाषा में अनुवाद किये हैं। इसके अतिरिक्त मोहन राकेश, राजेंद्र यादव, मन्नू भंडारी की कहानियों का भी यहाँ अनुवाद किया गया है।

रूस

यहाँ के लेनिन ग्राद विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग की स्थापना की गई है। डॉ. बारात्रिकोव ने श्रीरामचरित मानस का रूपी भाषा में पद्यानुवाद किया है। पंडित जवाहर नेहरू पुरस्कार से सम्मानित श्री चेलिशेव हिंदी भाषा और व्याकरण के विद्वान भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रेमचंद, रामचंद्र शुक्ल और निराला से संबंधित पुस्तकें लिखी हैं। भारतीय साहित्य के आधुनिक व्याख्याता के रूप में रूसी विद्वान अलेक्सांद्र सेके विच प्रसिद्ध हैं।

जर्मनी

जर्मनी में भारतीय भाषाओं- संस्कृत तथा हिंदी के प्रति खूब आकर्षण देखने को मिलता है। जर्मन के दार्शनिक गेडे से संबंधित यह घटना सर्वश्रुत है कि अभिज्ञान शाकुंतलम से इतने प्रभावित हुए कि उसे सिर पर धरकर वे खुशी से झूम उठे।

बेल्जिम

बेल्जिम के फादर कामिल बुलके ने रामकथा साहित्य में संशोधन कर भारत में भी ख्याति अर्जित की। लिपजिंग के कार्लमार्क्स विश्वविद्यालय से गूड़े हेलसिंग ने हिंदी व्याकरण और भारत की भाषाई स्थिति पर अनुसंधान कार्य किया है। व्याकरण, भाषाशास्त्र, आलोचना आदि सभी अंगों पर जर्मनी के विद्वानों ने कार्य किया है।

हंगरी

प्रेमचंद के उपन्यास निर्मला तथा अन्य कहानियों का हंगेरीयन भाषा में अनुवाद किया हुआ है। श्रीमती एवा इरारि ने हंगेरियन-हिंदी वार्तालाप पुस्तक लिखी है।

पोलैंड

डॉ. तात्याना ने पोलंड विश्वविद्यालय में एम. ए. हिंदी भाषा को प्रारंभ किया है। लक्ष्मीनारायण लाल, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और प्रेमचंद के नाटकों का अनुवाद भी पोलिश भाषा में किया गया है।

नेपाल

भारत चीन की सीमाओं के बीच हिमालय में अवस्थित नेपाल एक हिंदू राष्ट्र है। संस्कृत, यैथिली और हिंदी का स्पष्ट प्रभाव यहाँ देखा जाता है। लक्ष्मीप्रसाद देवकोरा गोपालसिंह

नेपाली, रमाकांत झा हिंदी के सुपरिचित रचनाकार है। सूर्यनाथ गोप काठमांडू के त्रिभुवन विश्वविद्यालय के हिंदी में प्राध्यापक हैं। डॉ. कृष्णचंद्र मिश्र त्रिभुवन विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष रहे हैं। आप रामायण के विद्वान हैं।

जापान

जापान के विश्वविद्यालयों में हिंदी को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। 1959 में टोकयो विश्वविद्यालय में हिंदी का स्वतंत्र विभाग स्थापित किया गया है। आज जापान के लगभग बारह विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है।

बैंकाक

बैंकाक (थाईलैण्ड) हिंदी संस्कृत प्रेम के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ प्रमुख धर्म बौद्ध है। इसलिए भारत में आकर यहाँ के लोग बौद्ध दर्शन का अध्ययन करते हैं। महात्मा गाँधी की आत्मकथा, रविंद्रनाथ टैगोर की गीतांजलि, पंडित नेहरू का डिस्कवरी ऑफ इंडिया का थाई भाषा में अनुवाद किया गया है।

इस तरह अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में हिंदी अपनी प्रगति निरंतर कर रही है। दुनिया के लगभग सभी देशों ने अपने आप को हिंदी के माध्यम से भारत से जोड़ा है। विश्व का भारत के प्रति उत्कृष्ट प्रेम का यही लक्षण है। जो भारत की सबसे बड़ी धरोहर है।

सहायक ग्रंथ-

1. गगांचल पत्रिका
2. देवनागरी लिपि ग्रंथ
3. राष्ट्र भाषा हिन्दी

प्लॉट न. 38, अल-नूर, सुमय्या मस्जिद के पास
चैत्यनका, तरोड़ा (बु) 431605

पृ. 69 का शेष भाग .....

'उसने कहा था' का चरमबिन्दु है। इन्होंने लहनासिंह को 'हीरे का हीरा' में मौत के मुँह से खींचकर पाठकों के सामने ला खड़ा कर दिया है। इस कहानी में लहनासिंह चीन की लड़ाई में घायल होता है। वह अपनी वृद्धा माँ से पूछता है-''अम्मा! क्या अम्बाले की छावनी से मैंने जो चिट्ठी लिखवाई थी, वह नहीं पहुँची?'' उसकी टॉग काट दिए जाने के समाचार से वृद्धा माँ तथा पत्नी बहुत दुःखी होती है। इस कहानी में भारतीय नारी के माँ तथा पत्नी-रूपों का वात्सल्य तथा शृंगार के परिप्रेक्ष्य में मर्मस्पर्शी चित्रण है।

इस प्रकार चन्द्रधर शर्मा गुलेरी द्वारा रचित कहानियाँ सामाजिक हैं। इनमें केन्द्रीय सम्वेदना प्रेम और कर्त्तव्य-भावना है। मानव जीवन के सर्वाधिक मार्मिक और गहन तत्त्व प्रेम को इन्होंने अतल गहराई तथा असीम ऊँचाई तक छू लिया है। इसलिए इनकी कहानियाँ हिन्दी साहित्य की स्थायी निधि बन गई है।

संदर्भ-

1. पीयूष गुलेरी, चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' व्यक्तित्व और कृतित्व, दिग्दर्शन चरण जैन, ऋषभचरण जैन एवं संतति, नई दिल्ली, 1983, पृ. 181
2. निधि शर्मा, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के साहित्य का सांस्कृतिक अनुशीलन, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 16 दिसम्बर, 2009, पृ. 46
3. मनोहर लाल, उसने कहा था और अन्य कहानियाँ, विकास पेपरबैक्स, दिल्ली, 1987, पृ. 60
4. वही, पृ. 61
5. वही, पृ. 69
6. निधि शर्मा, श्री चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' के साहित्य का सांस्कृतिक अनुशीलन, किताबघर प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, 16 दिसम्बर, 2009, पृ. 51
7. उसने कहा था और अन्य कहानियाँ, विकास पेपरबैक्स, दिल्ली, 1987, पृ. 16

शोध छात्र, हिन्दी विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान